रहीम ग्रन्थावली



वाणी प्रकाशन
नई दिल्ली-110002

रहीम ग्रन्थावली

रहीम की सम्पूर्ण कृतियों का प्रामाणिक संस्करण
विस्तृत भूमिका और जीवनचरित के साथ

सम्पादक
विद्यानिवास मिश्र

संयुक्त सम्पादक
गोविन्द रजनीश

वाणी प्रकाशन
4697/5, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-2
द्वारा प्रकाशित

आवरण : शिवकुमार सिन्हा : मूल्य 75.00 रुपये

नागरी प्रिंटर्स
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032
में मुद्रित

Raheem Granthawali
Ed. Dr. Vidyanivas Mishra

उत्तर प्रदेश के सहृदय मुख्यमन्त्री
श्री नारायण दत्त तिवारी को
सादर सप्रेम समर्पित

प्राक्कथन

'रहीम-ग्रन्थावली' 'रसखान-रचनावली' के बाद एक विशेष ग्रन्थमाला के क्रम में हाथ में ली गयी। मध्यकाल के बहुत से ऐसे कवि हैं, जिनकी काव्यभूमि बड़ी व्यापक है और जिनकी संवेदना जनमन-स्पर्शिनी है, पर ये कवि लोकप्रिय होते हुए भी काव्यजगत् में अभी उचित रूप में समादृत नहीं हुए हैं, क्योंकि इनकी ऐतिहासिक भूमिका को ठीक तरह समझा नहीं गया है। इन कवियों की प्रमुख ऐतिहासिक भूमिका यह है कि इन्होंने मजहब से ऊपर उठकर मानव भाव को परखा है और दरबारी परिवेश में पले होकर भी जनजीवन में ये पगे हुए हैं। रहीम की रचनाएँ कई बार कई स्थानों से छपीं, जिनका विवरण अन्त में दे दिया गया है, पर अभी तक समग्र संकलन नहीं छपा था, इसलिए पूर्व सामग्री को समाविष्ट करते हुए नूतन सामग्री (जो पांडुलिपियों से प्राप्त हुई) जोड़कर यह संकलन तैयार किया गया है। इसमें विस्तृत भूमिका और शब्दार्थ टिप्पणी जोड़ी गयी हैं।

पूर्व प्रकाशित सामग्री का बहुत बड़ा भाग हमें आगरे के चिरंजीव पुस्तकालय से प्राप्त हुआ, इसके लिए हम श्री देवराज पालीवाल के कृतज्ञ हैं। संकलन डॉ॰ गोविन्दप्रसाद शर्मा रजनीश ने तैयार किया और विभिन्न स्रोतों से सामग्री लेकर उन्होंने परिश्रमपूर्वक जीवन-चरित भी भूमिका के रूप में प्रस्तुत किया। उन्हें मैं साधुवाद देता हूँ। वाणी प्रकाशन ने सुरुचिपूर्वक इसे प्रकाशित किया, उनके प्रति आभारी हूँ।

'रहीम-ग्रन्थावली' हिन्दी के एक बहुत बड़े पाठक समुदाय की आकांक्षा की पूर्ति है, हमें इसके प्रकाशन से बहुत परितृप्ति मिली है। हमें विश्वास है कि यह ग्रन्थावली रहीम के पुनर्मूल्यांकन के लिए प्रेरणा देगी।

—विद्यानिवास मिश्र

क्रम

भक्तियुग ने विशाल मानवीय बोध जगाया, इसी के कारण रहीम, रसखान जैसे कवि व्यापक भाव बोध के साझीदार हुए। लोगों ने मान लिया है कि भक्ति-काल हिन्दू-नवजागरण का काल है। भक्ति काल को लोगों ने इस रूप में देखा ही नहीं कि वह सम्पूर्ण मानव के जागरण का काल है, मनुष्य के भीतर सोये हुए बड़े विराट् अनुराग के जागरण का काल है। इसीलिए वह हिन्दू को मुसलमान शासन के प्रतिरोध के भाव से नहीं भरता, वह इतना ही करता है कि हिन्दू और मुसलमान सब को किसी और शासन की प्रजा बनाता है, ऐसे शासन की प्रजा बनाता है जिसमें न हिन्दू हिन्दू रह जाता है न मुसलमान मुसलमान। शासन भी शासन नहीं रह जाता, वह प्रजा की इच्छा से शासित हो जाता है। भक्तियुग की यह भूमिका थी कि रहीम और रसखान जैसे शासक वर्ग के लोगों में महाभाव की आकांक्षा जगी, भक्ति से प्रेरित होकर बिना हिन्दू हुए, बिना वैरागी हुए भी उस अनुराग को वे साध लेते हैं जो विधिवत् दीक्षित विरक्त हिन्दू साधुओं के लिए भी आसानी से सुलभ नहीं है। इन कवियों ने भक्ति की वास्तविक भूमिका ठीक तरह से समझी। भक्ति काल की वास्तविक भूमिका है साधारण व्यक्ति की साधारण मनोवृत्ति में असाधारण, अलौकिक की संभावना देखना। यह भूमिका लाचार करती है कि न केवल साधारण जन की भाषा, उसकी भंगिमा और उसके परिवेश में गहरे रंग जाओ, उसके मन को भी अपना मन बना लो। रहीम और रसखान ने यही किया। रहीम के अवध क्षेत्र में रहने के कारण अवधी का रंग अधिक गहरा है, हालांकि उनकी सूक्तियों पर कबीर की भी छाप है, और कृष्ण भक्त कवियों में हरिराम व्यास और सूर की भी छाप है, परन्तु विशेष रूप से तुलसी के साथ उनका तादात्म्य भाषा और भाव, दोनों ही दृष्टि से अधिक गहरा है, दोनों ने एक दूसरे से लिया है। कहीं-कहीं तो दोनों के दोहे बिलकुल मिल जाते हैं, जैसे—

पात-पात को सींचिबो, बरी बरी को लोन ॥
तुलसी खोटे चतुरपन, कलि डहके कहु को न ॥
—तुलसी

पात-पात को सींचिबो, बरी-बरी को लोन ॥
रहिमन ऐसी बुद्धि को, कहो बरैगो कौन ?
—रहीम

एक ओर तुलसी की सहज सरलता रहीम में संक्रान्त हुई है, जो जनजीवन के साथ गहरे लगाव से आयी है, दूसरी ओर फारसी और ब्रज-भाषा के काव्य की बंकिमा पूरी भावुकता के साथ उनके काव्य में संक्रान्त हुई है, इसके कारण रहीम की काव्य-यात्रा अपने समय की साहित्यिक काव्य-यात्राओं का संगम बन गयी है। रहीम को सम्पूर्णता में पहचानने का अर्थ होता है सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी के साहित्यिक परिदृश्य को पहचानना।

पूरे हिन्दी साहित्य के इतिहास में रहीम एक अद्भुत व्यक्तित्व थे। इतना बड़ा धुरमा कि सोलह वर्ष की उम्र से लेकर बहत्तर वर्ष की उम्र तक निरन्तर कठिन लड़ाइयाँ जीतता रहा। इतना बड़ा दानी कि किसी ने कहा मैंने एक लाख अशर्फियाँ आँख से नहीं देखी तो एक लाख अशर्फियाँ उसे दे दी, और उसके साथ ही इतना विनम्र कि किसी कवि ने कहा कि देते समय ज्यों-ज्यों रहीम का हाथ उठता है त्यों-त्यों उनकी नजर नीची होती जाती है और रहीम ने उत्तर दिया :

देनहार कोई और है भेजत है दिन रैन।
लोग भरम हम पर धरें यातें नीचे नैन ॥

मुझे तो लाज आती है कि लोग भ्रमवश मुझे देनेवाला समझते हैं, जबकि सचाई यह है कि 'देनहार' कोई और है, वही दिन-रात भेजता रहता है। सहृदय ऐसे कि एक सिपाही की स्त्री के इस बरवै पर प्रसन्न हो गये :

प्रेम प्रीति को बिरवा चलेहु लगाय।
सींचन की सुधि लीजै मुरझि न जाय ॥

और उसे भरपूर धन देकर उसकी नवागत बधू के पास भेज दिया, इसी छन्द में पूरा ग्रन्थ लिख डाला। ऐसे गुणग्राही की स्तुति में फारसी और हिन्दी के अनेक कवियों ने स्तुतियाँ लिखीं जिनमें केशवदास, गंग, मदन, हरनाथ, अलाकुली खाँ, ताराकवि, मुकुन्द कवि, मुल्ला मुहम्मद रजा नवी, मीर मुर्दरिस माहवी हमदानी, यूसफुलि बेग,

उर्फी, मुल्ला हयाते जीलानी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं, । चरित्रवान् ऐसे कि एक रूपवती ने इनसे कहा कि तुम मुझे अपने जैसे पुत्र दो और इन्होंने उसकी गोद में अपना सिर डाल दिया, कहा, "एक तो पुत्र हो, न हो, फिर हो तो कैसा हो, इससे अच्छा यही है कि मैं तुम्हारा पुत्र बन जाऊँ।" भाषाओं के विद्वान् ऐसे कि अरबी, फारसी, उर्दू, तुर्की, संस्कृत — इन सब में रचनाएँ की और इनमें से प्रत्येक से दूसरी भाषा में हाल के हाल अनुवाद करने में कुशल, प्रसिद्ध ग्रन्थ 'बाबरनामा' का तुर्की से फारसी में अनुवाद अपनी युवावस्था में ही इन्होंने पूरा कर दिया था। अभागे ऐसे कि बचपन में बाप मरे, मारे-मारे फिरे, फिर अकबर ने इन्हें अपने संरक्षण में लिया, अकबर के बड़े विश्वासपात्र बने और अन्त में जहाँगीर और शाहजहाँ दोनों के द्वन्द्व में ऐसे पिसे कि साम्राज्य की सेवा का पुरस्कार यह मिला कि कैद में डाले गये और क़ैद में ही उनके पास उनके प्रिय पुत्र दाराब खाँ का सिर कटवाकर और एक बर्तन में रखवाकर भेजा गया, यह कहकर भेजा गया कि बादशाह ने तरबूज भेजा है, रहीम ने बस आँसू भरे नेत्रों से आसमान की ओर देखा और कहा कि हाँ, यह तरबूज़े शहीदी है, अपने जीवन-काल में स्वजनों की ही मृत्यु देखी, पहले पत्नी गयी, दो-दो लायक लड़के गये, दो-दो लायक दामाद गये तथा पोते भी आँख के सामने मरवा डाले गये। इतने उलट-फेर के बाद भी ऐसे स्वाभिमानी कि कभी आन पर आँच आने नहीं दी, चाहे दुख जितना भी भोगना पड़े।

रहिमन मोहि न सुहाय, अमिय पियावै मान बिन।
बरु विष देइ बुलाय, मान सहित मरिबो भलो॥

और ऐसे गहरे प्रेमी कि जिनके भीतर निरन्तर आग लगी रही, पर धुआँ नहीं निकला।

अन्तर दाव लगी रहै, धुआँ न प्रगटै सोय।
कै जिय जानै आपनो या सिर बीती होय॥

यह आग बुझ-बुझ के सुलगती रही :

जे सुलगे ते बुझि गए, बुझे ते सुलगे नाहिं।
रहिमन दाहे प्रेम के बुझि बुझि के सुलगाहिं॥

भक्ति की धारा के ऐसे स्नातक कि उन्होंने अपना एक पूरा काव्य ही श्रीकृष्ण को अर्पित किया और जितनी सहजता के साथ उन्होंने श्रीकृष्ण-विरह के चित्र खींचे हैं, वह यह कहने को विवश करता है : 'कोटिन हिन्दुन वारिए, मुसलमान हरिजनन पर'। एक ऐसा व्यक्तित्व जो

अनुभव का भरा हुआ प्याला हो और छलकने के लिए लालायित हो, मूल के कुल के हिसाब से विदेशी पर हिन्दुस्तान की मिट्टी का ऐसा नमक-हलाल कि उसने अपना मस्तिष्क चाहे अरबी, फारसी, तुर्की को दिया हो, पर हृदय ब्रजभाषा, अवधी, खड़ी बोली और संस्कृत को ही दिया, सारा जीवन राजकाज मे बीता और बात उसने की आम आदमी के जीवन की। ऐसे व्यक्तित्व के बारे मे बात करते समय बड़ी पीड़ा होती है कि सच्चे अर्थ मे हिन्दुस्तानी रंग के इस कवि को कोई समुचित आदर नहीं मिला, रहीम का मजार उपेक्षित पड़ा है, वहाँ कोई उर्स नही होता, उनके नाम पर कोई अकादमी नही है और पठन-पाठन में भी उन्हें स्थान मिलता है तो हद से हद हाई स्कूल तक, ऐसा मान लिया गया है कि वे उपदेशप्रद दोहे भर लिखते थे। उनकी जिस कविता को उपदेश-प्रधान एवं नीतिपरक कहा जाता है, उसकी और जाँच नही हुई। जायसी को रामचन्द्र शुक्ल मिले पर रहीम को कोई सहृदय समालोचक नही मिला।

मैंने जब रहीम के काव्य को पढा तो मुझे लगा कि रहीम का पूरा जीवन चाहे राजसी विलास करते समय, चाहे दर-दर मारे फिरते समय, चाहे फतह करते समय, चाहे कुचालियों के विश्वासघात से शाहशाह के कोप का पात्र होते समय, एक अवाँ था, जो भीतर ही भीतर दहकता रहा।

रहीम के बारे मे कहानी मिलती है कि तानसेन ने अकबर के दरबार में पद गाया :

जसुदा बार-बार यों भाखै।
है कोऊ ब्रज में हितू, हमारो चलत गोपालहिं राखै॥

और अकबर ने अपने सभासदों से इसका अर्थ करने को कहा। तानसेन ने कहा कि यशोदा 'बार-बार' अर्थात् पुन:-पुन: यह पुकार लगाती है कि है कोई ऐसा हितू जो ब्रज मे गोपाल को रोक ले। शेख फैजी ने अर्थ किया, 'बार-बार' रो-रोकर यह रट लगाती है। बीरबल ने कहा कि 'बार-बार' का अर्थ है द्वार-द्वार जाकर यशोदा पुकार लगाती है। खाने आजम कोका ने कहा, 'बार' का अर्थ दिन है और यशोदा प्रतिदिन यही रटती रहती है। अन्त मे अकबर ने खानखाना रहीम से पूछा। खानखाना ने कहा कि तानसेन गायक हैं, इनको एक ही पद को अलापना रहता है, इसलिए इन्होंने 'बार-बार' का अर्थ पुनरुक्ति किया। शेख फैजी फारसी के शायर हैं, इन्हें रोने के सिवा और क्या काम है। राजा

बीरबल द्वार-द्वार घूमने वाले ब्राह्मण हैं, इसलिए इनको बार-बार का अर्थ द्वार ही उचित लगा। खाने आज़म कोका ज्योतिषी (नजूमी) हैं, उन्हें तिथि-वार से ही वास्ता रहता है, इसलिए 'बार-बार' का अर्थ उन्होंने दिन-दिन किया, पर हुजूर, वास्तविक अर्थ यह है कि यशोदा का बाल-बाल अर्थात् रोम-रोम पुकारता है कि कोई तो मिले जो मेरे गोपाल को व्रज में रोक ले। इस व्याख्या से न केवल रहीम की विदग्धता और साहित्य की समझ का प्रमाण मिलता है, इससे रहीम के उस गहरे हिन्दुस्तानी रंग का प्रमाण भी मिलता है, जो रोमांच को सात्त्विक भाव मानता है और रोम-रोम में ब्रह्माण्ड देखता है, जो शरीर के रोम जैसे अंग को भी प्राणों का सन्देशवाहक मानता है, जो वनस्पति-मात्र को विराट् अस्तित्व का रोमांच मानता है।

रहीम की जिन्दगी एक पूरा दुःखान्त नाटक है, बड़ा चढ़ाव-उतार है। बाप बैरम खां अकबर ही की तरह एक बहुत बड़े कबीले के सरदार थे और उनका जन्म बदख्शाँ (तुर्किस्तान) में हुआ था। वे सोलह वर्ष की आयु से ही हुमायूं के साथ रहे और हुमायूं को फिर से दिल्ली की राजगद्दी पर बिठाया। हुमायूं के मरने पर ये अकबर के अभि-भावक बने। जिस साल हुमायूं मरे उसी साल लाहौर में रहीम का जन्म हुआ। रहीम की माँ अकबर की मौसी थी। अकबर से एक दूसरा रिश्ता भी था, बैरम खां की दूसरी शादी बाबर की नतिनी सलीमा बेगम सुल्ताना से हुई थी। बैरम खां के मरने के बाद अकबर के साथ सलीमा का पुनर्विवाह हुआ, पर भाग्य का फेर, चुगलखोरों ने बैरम खां और अकबर के बीच भेद डाला। बैरम खां ने विद्रोह किया, परास्त हुए और उन्हें हुक्म हुआ कि तुम हज करने जाओ। वे गुजरात पहुँचे थे कि उनका पूरा डेरा लुट गया, बैरम खां कत्ल हुए और जैसे-तैसे उनके वफादार साथी परिवार को, चार वर्ष के रहीम और बारह वर्ष की सलीमा सुल्ताना बेगम को अहमदाबाद लाये। रहीम जब पाँच वर्ष के थे, तब अकबर ने उन्हें अपने संरक्षण में लिया तथा उनकी शिक्षा-दीक्षा करायी और एक बड़े सरदार मिर्ज़ा अज़ीज कोकलताश की बहिन माह बानू बेगम से शादी करायी। कुल उन्नीस वर्ष की अवस्था में रहीम ने गुजरात में विजय प्राप्त की और वहाँ के सूबेदार नियुक्त हुए। गुजरात में कई बार विद्रोह हुए रहीम ने उन्हें कई बार दबाया। एक बार तो दस हजार सेना लेकर चालीस हजार सेना पर टूट पड़े और बिना किसी दूसरी सहायता के विजय प्राप्त की। इसके बाद तो फिर सिन्ध, अहमद-नगर और दक्षिण के दूसरे राज्यों पर इन्होंने विजय प्राप्त की, पर

इनसे अकबर के दो लड़के डाह करने लगे, क्योंकि अकबर का एक लड़का दानियाल रहीम का दामाद था। दूसरे लड़के स्वभावतः जलते थे। रहीम का दामाद खड़ी जवानी में अति मद्यपान के कारण मृत्यु को प्राप्त हुआ। जब रहीम 50 वर्ष के थे तो जहाँगीर गद्दी पर बैठे। पहले जहाँगीर ने उन्हें बड़ा आदर दिया पर, फिर जहाँगीर के लड़के परवेज और मुराद रहीम से ईर्ष्या करने लगे और रहीम कभी विद्रोह शान्त करने के लिए भेजे जाते कभी बुला लिये जाते। फिर रहीम शाहजहाँ के साथ जब मिले तो नूरजहाँ उनसे नाराज हुई, क्योंकि वह अपने दामाद शहरयार को गद्दी देना चाहती थी। और रहीम के दुर्दिन शुरू हुए। पत्नी और दामाद तो पहले ही जा चुके थे, दो-दो लड़के सामने गए, बाप-बेटे की लड़ाई में खानखाना ऐसे फँसे कि पुत्र-पौत्र मरवा डाले गये, खुद कैद में डाल दिये गये। अन्त में मरने के एक साल पहले जहाँगीर ने इन्हें कैद से छुटकारा दिया और फिर से सम्मान दिया। यही नहीं उन्हें उस महावत खाँ के विद्रोह को शान्त करने के लिए आदेश दिया जिसने जहाँगीर के आदेश से खानखाना को कैद किया था। महावत खाँ को पराभूत करके जब वे दिल्ली आये तो शरीर और मन से काफी जर्जर हो चुके थे। बहत्तर वर्ष की अवस्था में इनकी मृत्यु हुई। रहीम को रणथम्भौर, जौनपुर और कालपी में जागीरें मिली थीं। इससे वे अवधी भाषा के सम्पर्क में आये, और आगरे में तो राजधानी थी ही, वे ब्रज के रंग में रंगे, पर उनके ऊपर तुलसी का रंग गहरा है वैसे उन्होंने तीनों रंग की कविताएँ लिखीं। बरवै उन्होंने अवधी में लिखे। दोहे, सोरठे तथा कवित्त-सवैये ब्रज में और खड़ी बोली में 'मदनाष्टक' लिखा। संस्कृत में भी उन्होंने कुछ रचनाएँ कीं। उनकी एक रचना ज्योतिष का छोटा सा ग्रन्थ 'खेटक कौतुकम्' है जिसमें संस्कृत, फारसी, हिन्दी—तीनों का मिश्रण है। रहीम ने एक संस्कृत श्लोक में अपनी पीड़ायें व्यक्त की है: मैंने कौन-कौन भूमिकाएँ नहीं कीं, मैंने कौन-कौन स्वाँग नहीं किये, श्रीकृष्ण अगर मेरे इस स्वाँग और अभिनय से तुम्हारा कुछ मनोरंजन हुआ हो तो उससे मुक्ति दो। अगर तुम्हें मेरा कोई स्वाँग अच्छा नहीं लगा तो ऐसा आदेश दो कि मैं फिर कोई स्वाँग न भरूँ मेरे स्वाँग भरने पर ही तुम रोक लगा दो, मैं सहज हो जाऊँ।

आनीता नटवन्मया तवपुर :
श्रीकृष्ण या भूमिका
व्योमाकाश खखाम्बराब्धिवसवस्त्वत्प्रीतयेद्यावधि।
प्रीतस्त्वं यदि चेन्निरीक्ष्य भगवन् तत्प्रार्थित देहि मे

नो चेद् ब्रूहि कदापि मानय पुनस्त्वेतादृशी भूमिकाम् ॥

रहीमने फारसी में भी एक दीवान लिखा। बाबर के बाबरनामे की तुर्की से फ़ारसी में अनुवाद की चर्चा की जा चुकी है। परन्तु रहीम का यश सबसे अधिक उनकी सहज कविता के कारण है। सहज काव्य-भाषा की समृद्धि तुलसी के बाद अगर किसी मे है तो रहीम में है। तुलसी को सहजता मिली एक लम्बी साधना से और एक बहुत बड़े संकल्प से, अन्यथा केवल एक पुश्त के हिन्दुस्तानी रहीम को राजकाज मे रहते हुए, मारकाट करते हुए और एक कठिन प्रपच की जिन्दगी बिताते हुए इतनी सहजता मिलना असम्भव था। जब मैं रहीम की तस्वीर देखता हूँ—खूबसूरत चेहरा, बाँकी पाग, बायें हाथ मे रत्नजटित तलवार, बायाँ हाथ ऐसे खुला हुआ जैसे किसी से हाथ मिलाना चाहता हो या सम्पत्ति लुटाना चाहता हो, शरीर तना हुआ पर आँखें मुस्कराती हुई और जब मैं जहाँगीर के मित्र ओरछा के वीरसिंह देव के आश्रित कवि केशवदास का यह शब्दचित्र पढ़ता हूँ :

अमित उदार अति पावन विचारि चारु
जहाँ-तहाँ आदरियो गंगा जी के नीर सों।
खलन के घालिबे को, खलक के पालिबे को
खानखाना एक रामचन्द्र जी के तीर सों ॥

तो गंगा के जल की तरह से पवित्र और रामचन्द्र जी के तीर की तरह से शत्रुवेधक, परन्तु जगत्पालक व्यक्तित्व को उनकी कृति मे तलाश करने की ललक जाग उठती है। रहीम ने प्रेमपंथ का एक चित्र खींचा है :

रहिमन मैन तुरंग चढ़ि चलिबो पावक माँहि।
प्रेमपंथ ऐसो कठिन सबसों निबहत नाँहि ॥

घोड़े पर सवार होकर के आग के भीतर चलना ऐसी कठिन राह सबसे नही निभती। यह राह एक जलन है, दूसरी ओर बड़ी फिसलन एक ओर जिस पर चींटी के भी पैर फिसल जाते हैं और ससार में लोग हैं कि उस पर स्वार्थ रूपी बोझ से लदा हुआ बैल ले जाना चाहते हैं। वे यह नही जानते कि प्रेम कोई लेन-देन का सौदा नही है। रहीम जिन्दगी भर घोड़े पर सवार हो आग में दौड़ते रहे।

रहीम के काव्य-तुरंग की भी यात्रा अग्नियात्रा ही तो है। वह अग्नि है जीवन के सहज प्यार की, कभी बड़ी सुखद, कभी बड़ी दु सह। पहले पड़ाव तक वे चढ़ती जवानी के उन्मादी अनुभवों मे गुजरते हैं, पर वे अनुभव भी राजसी जीवन के अनुभव नही हैं, विभिन्न प्रकार के सामान्य जन की मानसिक स्थितियों में प्यार के अनुभव हैं। इनमें हास-विलास

है, सजने सजाने का भाव है, लालसा है, विदग्धता है, छल है, मान-मनौअल है, प्रतीक्षा है, रागरंग है, ईर्ष्या है, उत्कण्ठा है और लगन है। कुल ले-देकर लौकिक शृंगार की लहकदार छटा है।

इस काल की दो रचनाएँ हैं—बरवै नायिका भेद और नगर-शोभा। बरवै नायिका भेद में नायिका की विभिन्न अवस्थाओं के चित्र हैं। एक चित्र है :

मितवा चलेउ बिदेसवा, मन अनुरागि।
पिय की सुरत गगरिया, रहि मग लागि।।

इस चित्र में प्रिय की स्मृति का कलश लिये नायिका रास्ते में खड़ी रहती है, जब प्रिय लौटेंगे और स्मृतियों से भरा हुआ कलश उनका मंगल-शकुन बनेगा। एक दूसरा चित्र है :

भोरहि बोलि कोइलिया, बढ़वति ताप।
घरी एक भरि अलिया, रहु चुपचाप।।

अभी नींद रात भर स्मृतियों में खोये-खोये उचटी रही। जरा सी आँख लगी कि कोयल सबेरे ही बोल पड़ी और सबेरे ही सबेरे ताप बढ़ गया। एक घड़ी तक तो चुप रहती। इसी काल की दूसरी रचना है, नगर-शोभा जिसमें विभिन्न व्यवसायों, वर्गों, जातियों-उपजातियों की रूपसी तरुणियों के चित्र हैं। कुंजड़िन का एक चित्र है :

भाटा बरन सु कौजरी, बेचै सोवा साग।
निलजु भई खेलत सदा, गारी दै दै फाग।।

बैंगन की तरह काली कुंजड़िन सोवा साग बेचती है और निलज होकर फाग खेलती है। और इस ग्रंथ में आदि रस की परम द्युति को घट-घट में देखने की कोशिश है। कोई व्यवसाय छूटा नहीं है और आश्चर्य होता है कि कितने व्यवसाय थे। कलालिन, गाड़ीवान, महावत, नाल-बन्दिनी, चिरवादारिन (सईस की स्त्री), कमानगरी, नगारची, ढलगरी (ढाल बनाने वाली), बाजदारिनी (बाज की सेवा में नियुक्त), सबुनी-गरी (साबुन बनाने वाली), कुन्दीगरिन (सोने का पत्तर पीटने वाली), यहाँ तक कि जिलेदारिनी भी उसमें सम्मिलित है और उसका रंग कुछ और ही है :

औरन को घर सघन मन चलें जु घूंघट माँह।
वाके रंग सुरंग को जिलेदार पर छाँह।।

जिलेदार देखरख उनके घर के रहता है।

उसके बाद उनका दूसरा पड़ाव आता है, जिसमें जीवन के तरह-तरह के

खट्टे-मीठे-तीते अनुभव एवं दिनों के फेर के वर्णन हैं, कुचालियों के वर्णन हैं, सज्जनों की सहज सज्जनता के चित्र हैं, कुसंग और सत्संग के प्रभाव का वर्णन है, और मान-मर्यादा का ऐसा स्वरूप चित्रित है, जो हर अवस्था के हर आदमी के लिए कठिन होते हुए भी वांछनीय लगता है। इस प्रकार के चित्र दोहों या सोरठों में हैं और इन्हें लोग प्रायः नीति का दोहा कहकर एक किनारे रख देते हैं। प्राचीन भारतीय साहित्य से ही सूक्ति की एक परम्परा चली आ रही है। वह सूक्ति जीवन के निरीक्षण और गहरी अनुभूति से जब उभरती है तो सटीक होती है और तब वह जनजीवन की स्मृति का ही नहीं बल्कि उसकी मति का भी और उसकी प्रज्ञा का भी अंग बन जाती है। इन सूक्तियों को आदमी केवल याद ही नहीं रखता, उनको जीता भी है और उनसे प्रेरित होकर अपने कर्त्तव्य का निर्धारण भी करता है। रहीम की सूक्तियों की विशेषता यह है कि उनके सारे दृष्टान्त या तो पुराणों से लिये गये हैं या फिर सामान्य जीवन से। दृष्टान्तों के चयन में रहीम की मौलिकता और उनकी निरीक्षण-शक्ति का पता चलता है। पुराने जमाने की घड़ी का एक चित्र है जिसमें एक सम्पुटी में (शीशे के दो समान जुटे हुए गोलों में) जल भरकर के बारीक छेद से निकाला जाता था और तब घड़ियाल बजाया जाता था। इसी को लक्ष्य करके रहीम ने एक दोहा लिखा है :

रहिमन नीच प्रसंग ते, नित प्रति लाभ विकार।
नीर चोरावै सपुटी, मार सहे घरियार॥

पानी तो चुराती है सपुटी और मार सहता है घड़ियाल। नीच के पास रहने पर यही होता है। पौराणिक दृष्टान्त का एक सटीक उदाहरण है :

रहिमन याचकता गहे, बड़े छोटे ह्वै जात।
नारायन हू को भयो, बावन आँगुर गात॥

माँगने वाला कितना छोटा हो जाता है, विराट् नारायण भी माँगते समय वामन हो जाते हैं। सबसे अधिक अचरज की बात तो वहाँ है, जहाँ रहीम ने जीवन को एक बड़ी व्यापक दृष्टि से देखा है और जिन्दगी की हक़ीक़त कई परिपार्श्वों से पहचानी है। एक दोहे में उन्होंने कहा है कि शत्रु-मित्र की पहचान तीन तरह से होती है :

रहिमन तीन प्रकार ते, हित अनहित पहिचानि।
पर बस परे, परोस बस, परे मामिला जानि॥

आप परवश हो जाएँ, आप पड़ोस में बसें या आप किसी मामले में फँस जाएँ, तब शत्रु-मित्र की सही पहचान अपने आप हो जाती है। यह जितना सच रहीम के समय में था उतना ही सच आज भी है। रहीम को ओछे और बड़े की बड़ी सूक्ष्म पहचान है। अगर छोटा है तो जब रीत जाता है तो सामने दिखाई पड़ता है और जब वह भर जाता है तो पीठ कर लेता है जैसे रहट की घरिया जब तक खाली रहती है तब तक सामने रहती है और जब भर जाती है तो पीछे उलट जाती है। और जो बड़ा होता है, वह मेंहदी की तरह से होता है। उसे कोई पीसता भी है तो उसके बड़प्पन का रंग उस पर चढ़ जाता है—'बाँटन-वारे को लगे ज्यों-ज्यों मेंहदी को रंग।' पर रहीम की दृष्टि में बड़प्पन पद से नहीं सम्बद्ध है, उन्होंने तो राजा को कूची, मगत और कामातुर स्त्री के साथ जोड़ दिया है कि ये चारों न अर्ज सुनते हैं, न किसी की गर्ज सुनते हैं। ये केवल अपना ही सुनते हैं। रहीम बड़प्पन की पहचान इसमें मानते हैं कि वह कितना सह सकता है। उसको कोई छोटा भी कहे तो वह कभी घटता नहीं है, गिरिधर को कोई मुरलीधर भी कहे तो वे उससे नाराज नहीं होते :

जो बड़ेन को लघु कहें, नहिं रहीम घटि जाहि।
गिरिधर मुरलीधर कहे, कछु दुख मानत नाहिं॥

परन्तु रहीम की इनसे भी मार्मिक सूक्तियाँ मान और मर्यादा को लेकर कही गयी हैं या फिर दिनों के हेर-फेर को लेकर कही गयी हैं। पानी पर रहीम की उक्ति प्रसिद्ध ही है :

रहिमन पानी राखिये, बिन पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरे, मोती, मानुष, चून॥

दिनों के फेर के ऊपर सबसे तीखी उक्ति है :

रहिमन एक दिन वे रहे, बीच न सोहत हार।
वायु जु ऐसी बह गयी, बीचन परे पहार॥

कभी ऐसा था कि हार का भी व्यवधान असह्य था और कुछ ऐसी हवा चली कि वे हार छाती पर पहाड़ हो गये हैं और ऐसी स्थिति में चुपचाप सहना ही एकमात्र विकल्प रह गया है :

रहिमन चुप ह्वै बैठिए देखि दिनन के फेर।
जब नीके दिन आइहैं बनत न लगिहैं बेर॥

और इस विकल्प से भी काम नही चलता । इच्छाओ की ही होली जलानी होती है ।

> चाह गई चिंता मिटी, मनुआ बेपरवाह ।
> जिनको कछु ना चाहिए, वे साहन के साह ।।

ऐसे भिन्न-भिन्न प्रकार के अनुभवों से गुज़रते हुए भी रहीम हर एक पड़ाव पर कभी भी प्यार की सरसता नही खोते । वे जानते हैं कि प्रेम से नर क्या नारायण भी वश मे हो जाते हैं और इस जन्म की सार्थकता यही है कि,

> रीति प्रीति सबसों भली, बैर न हित मित गोत ।
> रहिमन याही जनम की, बहुरि न संगत होत ।।

तीसरे पड़ाव तक पहुँचते-पहुँचते प्रेम का अनुभव गहराता जाता है । वे पहचानने लगते हैं कि प्रेम एक ऐसा जुआ है कि जिसमे केवल प्राणो की बाज़ी लगती है और हार-जीत की कोई चिन्ता नही रहती, यह लेन-देन नही है, अपनी ओर से पूरा समर्पण है :

> यह न रहीम सराहिये लेन-देन की प्रीत ।
> प्रानन बाज़ी राखिये, हारि होय कै जीत ।।

पर रहीम प्रेम की पीर ही नही प्रेम का सुहाना रंग भी पहचानते हैं । यह एक नया रंग है जो प्रेमी और प्रेमिका दोनो के अलग-अलग रंग नही रहने देता, *एक नया रंग बना देता है* और जैसे हल्दी और चूना मिलते हैं तो हल्दी अपना पीलापन छोड़ देती है और चूना अपनी सफेदी, दोनो मिलकर चटक लाल हो जाते हैं ।

> रहिमन प्रीति सराहिये मिले होत रंग दून ।
> ज्यों हरदी जरदी तजै तजै सफेदी चून ।।

रहीम के प्रेम के रंग मे लौकिकता और अलौकिकता दोनो की अलग-अलग छटा है । एक ओर रहीम यह पहचानते हैं कि ब्याह एक व्याधि है, ढोल बजा-बजा करके पाँव में बेड़ी पड़ती है, हो सके तो इससे बचो :

> रहिमन ब्याह बियाधि है सकौ तौ जाहु बचाय ।
> पाँय मे बेड़ी परत है ढोल बजाय बजाय ।।

और दूसरी ओर यह भी पहचानते हैं कि एक बार प्रेम का जुड़ाव हो जाय तो उसे तोडना नही चाहिए । जब प्रेम टूट जाता है तो फिर मिलता नही और मिलता है तो गाँठ पड़ ही जाती है :

रहिमन धागा प्रेम का मत तोड़ो छिटकाय।
टूटे तो फिर ना मिले मिले गाँठ पड़ जाय॥

अन्त में रहीम नाते निभाते-निभाते यह अनुभव करने लगते हैं कि असली नाता तो जुड़ा नहीं। सब नाते-रिश्ते चूल्हे में झोंक कर पार उतरना चाहते हैं :

रहिमन उतरे पार भार झोंकि सब भार में

तब वे ऐसे प्रियतम की छवि आँखों में भरना चाहते हैं, जिसके भर जाने पर दूसरी छवि के लिये कोई गुंजाइश न रह जाय :

प्रीतम छवि नैननि बसी, पर छवि कहाँ समाय।
भरी सराय रहीम लखि, पथिक आप फिरि जाय॥

जब सराय भरी रहेगी तो पथिक आयेंगे भी तो खुद लौट जायेंगे।

वे आँखों की पुतली को सालिग्राम बना लेना चाहते हैं, ऐसा सालिग्राम जो चाँदी के अरघे में रखा हुआ हो और नहलाया जा रहा हो प्यार के जल से :

रहिमन पुतरी स्याम, मनहुँ जलज मधुकर लसै।
कैधों सालिग्राम, रूपे के अरघा धरे॥

ऐसी पवित्र उत्प्रेक्षा शायद ही किसी दूसरे हिन्दी या किसी भी भारतीय भाषा के कवि के मन में उपजी होगी। कवियों ने आँखों में मीन, खंजन, अमृत, विष, शराब, कमल, तीर, कटार जाने क्या-क्या देखा, पर किसी ने आँखों की पुतरी में सालिग्राम नहीं देखा। रहीम के पास प्यार की पवित्रता की ऐसी पहचान थी।

रहीम ने इसीलिए तुलसी के निरपेक्ष रंग में चातक के प्रेम को सबसे ऊँचा माना, सबसे सच्चा माना :

आँखिन देखत सब ही, कहत सुधारि।
पै जग साँची प्रीत न, चातक टारि॥

और दूसरी प्रीति तो केवल आँखों का दिखावटी व्यवहार है, सच्ची प्रीति चातक की है, क्योंकि निरपेक्ष है। उन्होंने माना कि निरपेक्ष प्रीति ऐसी होती है जो अपने को पूरी तरह विलीन कर देती है, अपने लिए कोई अपेक्षा नहीं रखती। जब कोई ऐसी प्रीति पाने जाता है तो प्रीति हो करके ही लौटता है, जैसे कोई कहीं आग लेने जाय और खुद ही आग बनकर लौटे, ऐसी आग जो कभी बुझे ही नहीं, भभक-भभक कर जलती रहे :

गई आगि उर लाइ, आग लेन आई जो तिय।
लागी नाहि बुझाइ, भभकि भभकि बरि बरि उठै ॥

सूखी उपली भी उपली नही रह जाती, आग बन जाती है। और घर का रास्ता भूल जाता है, यह भूल जाता है कि घर से आग लेने हम निकले थे, बस आग देने वाले के पीछे-पीछे चल देने को मन करता है :

बरि गइ हाथ उपरिया, रहि गइ आगि।
घर कै बाट बिसरि गई, गुहनै लागि ॥

और इस स्थिति मे पहुँचना ऐसा है जिसके बारे मे कुछ भी कहा नही जाता। और जो कहते हैं, वे इस स्थिति को जानते नही और जो इसे जानते हैं, वे फिर कहते नही, 'मन मस्त हुआ तो क्यो बोले'।

रहिमन बात अगम्य की कहन सुनन की नाहि।
जे जानत ते कहत नहि, कहत ते जानत नाहि ॥

इस विलक्षण अनुभव से जो गुजरता है वह देख सकता है कि बिन्दु में कैसे सिन्धु समा गया है और कैसे इस सिन्धु को खोजने वाला अपने आप हैरान हो रहा है, क्योकि वह नही देखता कि सिन्धु की सार्थकता इसी मे है वह एक उछली हुई बिन्दु के आकर्षण मे समा जाय, आकर्षण से खिचकर उसी मे अपना पूरा ज्वार, पूरी उमंग, पूरी इन्द्रधनुषी रंगत समाहित कर दे :

बिन्दु में सिन्धु समान, को अचरज कासो कहे।
हेरनहार हेरान रहिमन अपने आप पै ॥

और यह संभव तब होता है जब चित्त से 'स्याम की बानि' न टरे :

अनुदिन श्री वृन्दावन ब्रज ते आवन आवन जानि।
अब 'रहीम' चित ते न टरति है सकल स्याम की बानि ॥

कहा जाता है कि रहीम वृन्दावन गये और गोविन्द देव के मन्दिर के सामने बैठ गये। उन्हें प्रवेश नही मिल रहा था। उन्होंने दो पद गाये और गोविन्द ने स्वयं आकर उन्हें दर्शन दिया, अपने हाथ से उन्हे प्रसाद दिया। उनमे से पहला पद इस प्रकार है :

कमल-दल नैननि की उनमानि।
बिसरत नाहि सखी मो मन ते मंद मंद मुसकानि ॥
यह दसननि दुति चपला हूँ ते महा चपल चमकानि।
बसुधा की बसकरी मधुरता सुधा-पगी बतरानि ॥

चढ़ी रहे चित उर बिसाल की मुकुलमाल पहरानि।
नृत्य समय पीतांबर हू की फहरि फहरि फहरानि॥
अनुदिन श्री वृन्दावन ब्रज ते आवन आवन जानि।
अब 'रहीम' चित ते न टरति है सकल स्याम की बानि॥

यही है सिन्धु का बिन्दु मे समाना। इस माने मे वे सूर के भी बटाईदार हैं। जब वे कहते हैं कि श्याम के चन्द्रमुख को आमने-सामने देखने के लिए साध लेकर मरना ही बदा रहता है। ओट करते हैं तो रहा नहीं जाता और मिलने में भी सनातन विरह की बाधा बनी रहती है। इस विरह की बाधा को शब्दों मे कैसे उतारें :

कौन धौं सीख 'रहीम' इहाँ इन नैन अनोखि सनेह की सौंधनि।
प्यारे सो पुन्यन भेंट भई यह लोक की लाज बड़ी अपराधनि॥
स्याम सुधानिधि आनन को मरिये सखि सूंघे चितैबे की साधनि।
ओट किए रहतै न बनै कहतै न बनै बिरहानल बाधनि॥

इस पड़ाव की रचनाएँ दोहो मे है, सोरठो मे है, बरवै मे हैं। बरवै में श्रीकृष्ण के विरह मे बारहो मास तड़पती गोपी के चित्र हैं, उपालम्भ के चित्र हैं। इसके अलावा कुछ थोड़े से कवित्त-सवैये और पद हैं। कुछ संस्कृत के श्लोक भी हैं जिनमें तीन तो श्रीकृष्ण को सम्बोधित हैं, एक राम को और एक गंगा को। श्रीकृष्ण सम्बोधित एक श्लोक मे तो रहीम अपने हृदय के गहन अन्धकार मे माखन चोर श्रीकृष्ण को छिप जाने का आमन्त्रण देते हैं। बड़ी सुरक्षित जगह है, यहाँ कोई तुम्हें पकड़ नहीं पायेगा।

नवनीतसारमपहृत्य शङ्कया स्वीकृतं यदि पलायनं त्वया।
मानसे मम घनान्धतामसे नन्दनन्दन कथं न लीयसे॥

दूसरा श्लोक पहले उद्धृत किया जा चुका है। तीसरे श्लोक मे रहीम श्रीकृष्ण को कुछ देना चाहते हैं और देखते हैं कि उनके पास सब कुछ तो है। रत्नाकर ही उनका घर और लक्ष्मी ही उनकी गृहिणी है, उनको क्या दिया ही जा सकता है। बस उनका मन राधा ने ले लिया है चुरा लिया है। मैं अब उन्हें अपना मन दे दूं। वे मनवाले हो जायें और मैं उनकी सुधि मे उन्मन हो जाऊँ :

रत्नाकरोऽस्ति सदनं गृहिणी च पद्मा
किं देयमस्ति भवते जगदीश्वराय।
राधागृहीतमनसे मनसे च तुभ्यं
दत्तं मया निजमनस्तदिदं गृहाण॥

गंगा को सम्बोधित श्लोक में एक गहरा और सूक्ष्म भाव है। जब मृत्यु हो तो गंगा तुम्हारे किनारे। मेरी मृत्यु हो तो मुझे विष्णु का सारूप्य न देना, शिव का सारूप्य देना ताकि तुम मेरी सिर आँखों बनी रहो :

अच्युतचरणतरङ्गिणि शशिशेखर-मौलि-मालतीमाले।
मम तनु-वितरण-समये हरता देया न मे हरिता॥

शायद ही किसी भक्त कवि ने गंगा से ऐसा वरदान माँगा और गंगा के लिए ऐसे भाव अर्पित किये हों। रहीम के चित्त का यह संस्कार संभव ही इसीलिए हुआ है कि उन्होंने आत्मीयता की राह खोजी है। वे अपनी विदग्धता को सहजता से जोड़ते हैं। फ़ारसी के अन्दाज़ को गाँव के सलोनेपन के साथ, अपने पराक्रम को क्षमा के साथ और राजसी ठाटबाट को फकीरी के साथ जोड़ सकते हैं। वे मुसलमान जन्मे, मुसलमान दफनाये गये। धर्म नहीं बदला, कर्म नहीं बदला, पर उन्होंने अपनी पहचान एक बड़ी पहचान के साथ जोड़ी, जिसमें न किसी नदी का नाम रहता है, न किसी नाले का, केवल एक नाम रहता है— 'सुरसरि' का जिसमें जन की पीर अपने पीर से प्रबल हो जाती है और जन की पीर टालने वाले 'श्री बलबीर' एकमात्र आत्मीय बच रहते हैं और उनके बिना सुख की कोई संभावना नहीं रहती :

जदपि बसत हैं सजनी, लाखन लोग।
हरि बिन कित यह चित को, सुख-संजोग॥

ऐसे नेही चित्त वाले रहीम के काव्य में धुआँ कहाँ से प्रगट होगा। वहाँ तो केवल भीतर की एक रोशनी होगी, उसके पास आने पर सारी जमी हुई जड़ता पिघल आयेगी। यह अवश्य है कि उस निर्धूम आग को बार-बार अपने भीतर दहकाना होगा।

मुक्ता का हार यदि टूट जाता है तो फिर-फिर उसे पोहना चाहिए, मानव मूल्यों से लगाव छूट जाता है तो फिर-फिर जोड़ना चाहिए। रहीम इसी जुड़ाव के कवि हैं।

टूटे सुजन मनाइये, जो टूटे सौ बार।
रहिमन फिर-फिर पोहिये, टूटे मुक्ताहार॥

जोड़ने का यह संकल्प हर ज़माने में आवश्यक होगा और यह संकल्प लेने वाला हर ज़माने में अपना बना रहेगा, ख़ास करके इस ज़माने में जहाँ सब कुछ टूट रहा हो।

जीवन-वृत्त

अब्दुर्रहीम खानखानाँ मुगल सम्राट् अकबर के मंत्री और सेनापति थे। यह ऐतिहासिक व्यक्तित्व तत्कालीन घटनाओं से सीधा जुड़ा रहा था। प्रमुख अमीर के रूप में इनके पिता बैरम खाँ, हुमायूँ और अकबर से जुड़े रहे थे। इसलिए इनका इतिवृत्त समकालीन इतिहास-ग्रंथों—'तुजुके बाबरी', 'हुमायूँनामा', 'अकबरनामा', 'तुजुके जहाँगीरी', 'मआसिरुल-उमरा', 'तजकरे खवानीन', 'रोजे तुलसफा', 'हबीब उलसियर', 'तारीख-ए-फिरिश्ता', 'मआसिरे रहीमी' तथा 'तारीख-ए-बदाउनी' में मिलता है।

पारिवारिक पृष्ठभूमि

अब्दुर्रहीम तुर्कमान जाति के कराकयलू (काली बकरी वाले) परिवार की बहारलू शाखा में उत्पन्न बैरम खाँ खानखानाँ के पुत्र थे। इनकी वंश-परम्परा इस प्रकार रही है—बहारलू > अलीशकर बेग > पीर अली > यार बेग > सैफ अली > बैरम खाँ > अब्दुर्रहीम। इस वंश का तुर्कमान की मुगल (मुगल खाँ पूर्वज के नाम पर) शाखा से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा था। तैमूर के वंशज मुहम्मद मिरजा ने अलीशकर की पुत्री से विवाह किया था। उसी वंश का सैफअली बाबर का मुसाहिब था, जिसने अपने लड़के का नाम बैरम बेग रखा, जो आगे चलकर बैरम खाँ खानखानाँ कहलाया।

बैरम बेग की शिक्षा बलख में हुई। 16 वर्ष की अवस्था में हुमायूँ के पास आकर नौकरी की[1] और बढ़ते-बढ़ते मुसाहबों और अमीरी की स्थिति तक पहुँचा। सन् 1934 में हुमायूँ ने गुजरात के बादशाह सुलतान बहादुर को भगा कर चंपानेर का किला जीत लिया। उस समय बैरम बेग ने पूरी सहायता की। शेरशाह सूरी से चौसा और कन्नौज के युद्धों के समय भी साथ रहा और उसने बड़ी वीरता से युद्ध

---

1. इसके अनुसार बैरम खाँ का जन्म सन् 1503 में माना जा सकता है।

किया। शेरशाह से पराजित होने पर हुमायूँ पश्चिम की ओर चला गया।

बैरम बेग हुमायूँ का विश्वासपात्र था। दुर्दिनों में उसने हुमायूँ का पूरा साथ दिया। शेरशाह ने बैरम को अपने यहाँ रखना चाहा किन्तु वह सहमत नहीं हुआ। उस समय उसका कथन था—'जो इखलास (भक्ति) रखता है, खता (धोखा) नहीं करता।' वह कष्ट सहन करता हुआ, सिंध में हुमायूँ से आ मिला। कामरान, जोधपुर और सिंध के सरदारों से सहायता न पाकर हुमायूँ अमरकोट, सिंध, काबुल, फारस और ईरान भटकता रहा। इस भटकन के दौरान छोटे भाई हिंदाल के गुरु शेखअली अकबर जामी की पुत्री हमीदा बानो के सौंदर्य पर रीझ कर 1542 में उसने विवाह कर लिया। 23 नवम्बर, 1542 को अकबर का जन्म हुआ। बाद में उसने असकरी मिर्जा से कंधार और कामरान से काबुल छीन लिया। हिंदाल के निधन पर गजनी की जागीर शाहज़ादा अकबर को मिली। सन् 1544 में ईरान के बादशाह से बैरम बेग को 'खाँ' या खानबादशाह की उपाधि मिली।

शेरशाह सूरी के पुत्र सलीमशाह सूरी की मृत्यु के पश्चात् सन् 1554 में हुमायूँ ने हिन्दुस्तान विजय के लिए प्रस्थान किया। उस समय मुनीम खाँ शाहज़ादा अकबर का अतालिक (संरक्षक) और बैरम खाँ सेनापति था (हुमायूँनामा, गुलबदन बेगम)। फरवरी, 1555 को उन्होंने लाहौर पर अधिकार कर लिया और 22 जून को सरहिंद में सिकन्दर सूरी को पराजित किया। जुलाई में दिल्ली पर अधिकार कर पुन. वह सिंहासन हथिया लिया, जिसे उसके पिता ने अपने बाहुबल से अर्जित किया था और अपनी दुर्बलता से खो दिया था। राजगद्दी पर बैठते ही हुमायूँ ने हिन्दुस्तान के जमींदारों से सम्बन्ध बनाने के लिए उनकी पुत्रियों से विवाह किया। हुसेन खाँ मेवाती का चचेरा भाई जमाल खाँ हुमायूँ के पास आया। उसकी बड़ी पुत्री का विवाह हुमायूँ से और छोटी का बैरम खाँ से कर दिया गया। इसी मेव कन्या से 17 दिसम्बर, 1556 को लाहौर में अब्दुर्रहीम का जन्म हुआ। मुंशी देवी प्रसाद (खानखानाँनामा) ने बड़े श्रम से इनकी जन्म-पत्री को खोज निकाला है—

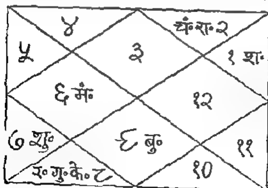
संवत् 1613 शा० 1578 मार्गशीर्ष शुक्ल, 14 चन्द्र घ० 15 पल, 37 परते पूर्णिमा कृत्तिका नक्षत्रे घ० 26/46 शिवयोगे घ० 24/20 इष्ट दिवसे सूर्योदयात् गत घटी 28/16 रात्रिगत घ० 2/55 मिथुन लग्ने लाभपुरे श्रीमत् खानखानाँ महाशयानाम् जनिरभूत्।

अब्दुर्रहीम के जन्म के आस-पास ही बैरम खाँ को खानखानाँ

की उपाधि मिली। नवम्बर, 55 में तेरह वर्षीय बालक अकबर को बैरम खाँ के संरक्षण में पंजाब का प्रांतपति नियुक्त किया गया।

27 जनवरी, 1556 को हुमायूँ का निधन हो जाने पर बैरम खाँ ने अकबर को लाहौर की राजगद्दी पर बैठाकर खुतबा पढ़वा दिया। राज्य-कार्य का समग्र भार बैरम खाँ खानखानाँ पर आ गया। अकबर और बैरम खाँ लाहौर से दिल्ली चल दिए। जालंधर में सब लोग ठहरे। यहीं बैरम खाँ का दूसरा विवाह बाबर की नवासी (पुत्री की पुत्री) सलीमा सुलताना बेगम से हुआ। इस सम्बन्ध को हुमायूँ ने ही निश्चित किया था किन्तु अपनी उलझनों के कारण वह कार्य सम्पन्न नहीं करा सका था। बैरम खाँ के कार्यों और योग्यता के पुरस्कार-स्वरूप शाही घराने से यह सम्बन्ध हुआ था, बैरम खाँ की मृत्यु के पश्चात् स्वयं अकबर ने उससे विवाह कर लिया।

जब अकबर गद्दी पर बैठा, तब उसका सदर मुकाम सरहिन्द था। उसके सामने बड़ी कठिनाइयाँ थीं। सरहिन्द, दिल्ली और आगरा के अतिरिक्त उसके पास कुछ न था। दिल्ली, आगरा पर भी अफ़गानों की तलवार मँडरा रही थी। अकबर बुद्धिमान् था, साथ ही उसे तुर्क सरदार बैरम खाँ का संरक्षण प्राप्त था। शत्रुओं की आपसी कलह और राज्यों की विभिन्नता उसके पक्ष में थी, लेकिन हिन्दुस्तान की सल्तनत खड़ी करने की कठिनाइयों को उसके सरदार समझते थे। उन्होंने हिन्दुस्तान छोड़कर काबुल को अपना केन्द्र बनाने के लिए अकबर को सुझाव दिया, किन्तु बैरम खाँ अनुभवशील था। उसने अफ़गानों के साथ अनेक युद्ध करके उनकी कमजोरियों को पहचान लिया था। सरदारों के परामर्श को अस्वीकार करते हुए उसने सुझाया कि पंजाब छोड़ते ही



पंजाब तो हाथ से निकल ही जायेगा, दिल्ली और आगरा से भी कोई सम्बन्ध नहीं रह जायेगा। हिन्दुस्तान पर अधिकार करने के बाद अपने घर काबुल में अफगान उन्हें एक दिन भी न टिकने देंगे। अकबर ने बैरम खाँ की बात समझी। वैसे भी वह अभिभावक के प्रभाव में था। इधर काबुल ने बगावत कर दी थी और वहाँ के तुर्क सरदारों ने अकबर के भाई हकीम के नाम पर काबुल का अधिकार दिल्ली में स्वतंत्र कर लिया। इस संकट के समय जब घर के बागी पीठ पर थे और प्रबल शत्रु सामने था, बैरम खाँ ने आश्चर्यजनक दृढ़ता और तेजी का परिचय दिया। दिल्ली से भागे तार्दी बेग और उसके सरदारों को कायर कहकर बन्दी बना लिया और पानीपत के मैदान में हेमू से मुकाबले की तैयारी कर दी।

बाबर के समान बैरम खाँ ने सेनानायकों के सम्मुख प्रेरक व्याख्यान दिया। हेमू की गतिविधियों को परखने के लिए एक छोटी सेना भेजी, जिसने हेमू के तोपखाने पर अधिकार कर शेष सेना को उससे काट दिया। पानीपत के घमासान युद्ध में हेमू की आँख में तीर लगने से राजपूतों और अफ़गानों के पैर उखड़ गये और वे भाग खड़े हुए। परिस्थिति की भयंकरता को समझकर और अकबर के हिचकिचाने पर आहत और निहत्थे हेमू को बैरम खाँ ने मार दिया। इस संदर्भ में स्मिथ (द ग्रेट मुगल अकबर में) का कथन विचारणीय है—"इसे चाटुकार दरबारियों ने गढ़ा था। गाजी बनने को प्रेरित करने पर अकबर ने हेमू की गर्दन पर प्रहार किया था।"

बैरम खाँ के कुशल नेतृत्व में अकबर के साम्राज्य का विस्तार होता चला गया। उसने अंतिम प्रतिरोध सिकंदर सूरी को आत्मसमर्पण के लिए बाध्य करके अधीन कर लिया।

बैरम खाँ अकबर का विश्वस्त अभिभावक ही नहीं, प्रारंभ में असाधारण शुभचिंतक था। हुमायूँ उसको अतालीक कहकर, प्रायः खान बाबा के नाम से पुकारता था। यही सम्मान अकबर ने भी दिया था। लेकिन धीरे-धीरे साम्राज्य के विस्तार और अपनी बढ़ती शक्ति के अहंकार से बैरम खाँ मदान्ध हो चला था। उसकी कठोरता और धाँधली बढ़ती गई। इतिहासकारों ने उसके पतन के निम्न कारण माने हैं—

1. सन् 1560 में अकबर 28 वर्ष का हो चुका था। उसे अपने पौरुष पर आत्मविश्वास जगने लगा था। ऐसी स्थिति में अभिभावक का नियंत्रण असहनीय प्रतीत हुआ। वह स्वयं सत्ता सँभालने के लिए

व्यग्र हो उठा।

2. उसकी इस मनःस्थिति को अन्तःपुर की महिलाओं और बैरम खां से असंतुष्ट सभासदों ने उकसाया। बैरम खां के दबदबे को तोड़ने में अकबर की धाय और हरम की एकमात्र रक्षिका माहम अनगा ने सर्वाधिक योग दिया। उसने अकबर को समझाया कि बैरम खां के प्रभाव से मुक्त हुए बिना उसकी बादशाहत सुरक्षित नहीं रह सकेगी।

3. बैरम खां के निर्देश पर शिया सम्प्रदाय के शेख गदाई नामक व्यक्ति को 'सद्र-ए-सुदूर' के उच्च पद पर नियुक्त किया गया। यह पद न्याय-अधिकारियों के प्रधान का होने के कारण प्रतिष्ठा का था। इसने सुन्नी सभासदों के साम्प्रदायिक वैमनस्य को जन्म दिया। उन्होंने बैरम खां पर शियाओं के साथ अत्यधिक पक्षपात का आरोप लगाया।

4. तार्दीबेग के प्राणदंड से अनेक प्रभावशाली व्यक्ति असंतुष्ट थे। कुछ लोग बैरम खां के अहंमन्यतापूर्ण, उग्र एवं अनुचित व्यवहार से रुष्ट थे।

5. बैरम खां के सेवक धनी हो रहे थे जबकि अकबर के निजी कोष की कोई व्यवस्था नहीं थी। उसके व्यक्तिगत अनुचरों को बहुत कम वेतन दिया जाता था। इससे अकबर के मन में बैरम खां के प्रति अरुचि उत्पन्न हो गई थी।

बैरम खां के विरुद्ध षड्यन्त्र में राजमाता हमीदा बानो बेगम, अकबर की धात्री माहम अनगा, उसका पुत्र आदम खां और उसका सम्बन्धी दिल्ली का अधिनायक शिहाबुद्दीन प्रमुख व्यक्ति थे। आखेट को गये अकबर को माता के अस्वस्थ होने का समाचार देकर बुलाया गया और दुर्ग की सुदृढ़ नाकेबंदी कर दी। बैरम खां के विरुद्ध जन-सामान्य में बादशाह का विश्वास खोने का प्रवाद फैला दिया गया। दिल्ली के दरबार में अकबर ने घोषित कर दिया कि अब से बादशाहत की बागडोर उसके हाथों में है। इसके साथ ही बैरम खां को हज के लिए मक्का जाने की अंतिम चेतावनी देते हुए अपने शिक्षक अब्दुल लतीफ के द्वारा यह संदेश भेजा—"तुम्हारी ईमानदारी और निष्ठा पर पूर्णरूपेण आश्वस्त होने के कारण मैंने राज्य के समस्त महत्त्वपूर्ण कार्यों को तुम्हारे संरक्षण में छोड़ दिया था और मैंने केवल अपने आमोद का ही ध्यान रखा था। अब मैंने शासन की बागडोर को अपने हाथ में धारण करने का निश्चय किया है और यह वांछनीय है कि अब तुम मक्का की तीर्थयात्रा करो, जिसके तुम इतने दीर्घकाल से इच्छुक थे। तुम्हारी आजीविका के लिए हिन्दुस्तान के परगनों में से तुम्हें

उपयुक्त जागीर प्रदान की जायेगी, जिसका भूमिकर तुम्हें या तुम्हारे अभिकर्त्ताओं को भेज दिया जायेगा।"

बैरम खाँ के कुछ परामर्शदाताओं ने अकबर को बंदी बनाने और युद्ध से निर्णय करने का सुझाव दिया, किन्तु बैरम खाँ ने कुछ असमंजस के साथ जीवन पर्यन्त की स्वामिभक्ति को कलंकित करने से अस्वीकार कर दिया। उसने अपने अधिकार-चिह्न अकबर को लौटा दिए।

अप्रैल, 1560 में जब बैरम खाँ बयाना चला गया, ससैन्य उसका पीछा करने और 'उसके साम्राज्य छोड़ने की व्यवस्था करने के लिए' अथवा जैसा कि बदाउनी (तारीख-ए-बदाउनी) दो टूक बात कहता है, 'उसे विलम्ब का अवकाश दिये बिना यथाशीघ्र मक्का के लिए बोरिया बिस्तर बँधवाने' को पीर मुहम्मद चुना गया। किन्तु उसके भूतपूर्व नौकर को भारत से निकालने का जो कार्य सौंपा गया, उसके अपमान की चुभन इतनी तीखी थी कि क्षुब्ध होकर बैरम खाँ ने विद्रोह कर दिया। अपने परिवार को तबरहिंद (संभवतया भटिंडा) छोड़कर पंजाब चला गया। जालंधर के निकट वह शाही सेना से पराजित हुआ। बाद में चिनाब नदी के निकट पकड़ कर, उसे अकबर के सामने प्रस्तुत किया गया। अकबर ने भूतपूर्व संरक्षक के शोक भरे शब्दों को उदारतापूर्वक स्वीकार कर मुक्त कर दिया और उसके मक्का जाने की व्यवस्था कर दी।

अपनी नियति को स्वीकार कर अभागा और विपन्न बैरम खाँ गुजरात की ओर चला। पाटन में मुबारक खाँ नामक अफ़गान ने अपने साथियों के साथ हमला करके बैरम खाँ को मार डाला।

माहम अनगा और पीर मुहम्मद की प्रशंसा करने वाला अबुलफ़ज़ल भी 'अकबरनामा' में यह स्वीकार करने को विवश हुआ—"बैरम खाँ वास्तव में सज्जन था और उसमें उत्कृष्ट गुण थे। वस्तुत, हुमायूँ और अकबर दोनों ही सिंहासन प्राप्ति के लिए बैरम खाँ के ऋणी थे।" कुछ लोगों का विचार है कि बैरम खाँ के संरक्षण से मुक्त होने के लिए अकबर विवेकहीन स्त्रियों के निकृष्टतम फंदे में फँस गया था। बैरम खाँ काव्य-मर्मज्ञ और अच्छे रचनाकार थे। फ़ारसी और तुर्की भाषा में दीवान लिखे थे। 'मआसिरुल-उमरा' में लिखा है कि उन्होंने अच्छे-अच्छे उस्तादों के शेरों में सुधार किए जिन्हें अच्छे-अच्छे भाषाविदों ने स्वीकार किया था।

अब्दुर्रहीम

बैरम खाँ की मृत्यु के पश्चात् मुहम्मद अमीन दीवाना, बाबा जम्बूर और ख्वाजा मलिक अनेक कठिनाइयाँ झेलते हुए चार वर्षीय अब्दुर्रहीम के साथ अहमदाबाद पहुँचे, जहाँ वे चार माह रहे (खानखानौनामा) । अकबर ने उसके पालन-पोषण का भार लेकर 11 अगस्त, 1561 को आगरा बुला लिया। अकबर के संरक्षकत्व में उसका पालन-पोषण हुआ। उसकी शिक्षा का असाधारण प्रबन्ध किया गया। उसने अरबी, फारसी, तुर्की, संस्कृत और हिन्दी में दक्षता प्राप्त कर ली थी। जैसा कि अब्दुल बाकी (मआसिरे-रहीमी, भाग 2, पृष्ठ 562) ने लिखा है—'रहीम से मुझे ज्ञात हुआ कि 11 वर्ष की आयु में बिना गुरु की सहायता के उसने काव्य-रचना प्रारम्भ कर दी थी।'

समझदार होने पर अकबर ने इन्हें 'मिर्जा खाँ' (यह पदवी कभी मुगल बादशाहों को मिलती थी। बादशाह बनने से पूर्व बाबर मिर्जा ही था। हुमायूँ ने अकबर का नाम मिर्जा अकबर रखा था। बाद में यह उपाधि अमीरों को दी जाने लगी।) की उपाधि प्रदान की और अपनी धाय माहम अनगा की पुत्री महाबानू से इनका विवाह करा दिया। इस प्रकार बादशाह वंश से इनका वही सम्बन्ध हो गया जो इनके पिता बैरम खाँ का था। आगे चलकर इनकी पुत्री का विवाह शाहजादे दानियाल और पौत्री का विवाह शाहजहाँ से हुआ।

प्रतिधिकारी से गुजरात में विप्लव की सूचना पाकर अकबर 23 अगस्त, 1573 को द्रुतगामी साँड़नियों पर सवार होकर गुजरात चल दिया। शत्रु सेना (बीस हजार) से सामना करने के लिए उसने अपनी अल्प सेना (तीन हजार) को तीन भागों में विभक्त किया—मध्य, दक्षिण और वाम। हरावल (मध्य) का सम्मानित सेनापतित्व सोलह वर्षीय किशोर अब्दुर्रहीम खाँ को सौंपा गया। युद्ध-क्षेत्र में यशोपार्जन करने के लिए, निश्चय ही पुराने अनुभवी सेनानायकों के निर्देशन में, उसे पहला अवसर प्रदान किया गया। गुजरात अभियान के दौरान पाटन की जागीर इन्हें मिली। जिस भूमि पर पिता का वध हुआ, स्वयं के प्राणों पर आ बनी, वही उनके भाग्योदय का निमित्त बनी। दो वर्ष पश्चात् समग्र गुजरात पर इनका अधिकार हो गया। दो वर्ष ये मेवाड़ रहे। शहबाज खाँ की सहायता से कुम्भलनेर और उदयपुर पर अधिकार कर लिया।

बादशाह ने इन्हें कुलीन, समदर्शी, निःस्वार्थी और प्रजा का सच्चा सेवक जानकर सन् 1579 में 'मीरअर्ज' का पद प्रदान किया।

बाद मे इन्हें अजमेर की सूबेदारी और रणथभौर का प्रसिद्ध किला भी मिला। अब्दुर्रहीम की कार्यक्षमता, योग्यता और बुद्धिमत्ता से अकबर इतना प्रभावित था कि किसी उच्च पद के खाली होने पर अकबर की दृष्टि इन्ही पर जाती थी। शाहजादे सलीम की 'अतालिकी' रिक्त हुई तो इन्हे दी गई। बाद मे घोड़ो के क्रय-विक्रय के प्रबन्धक और शाहजादे के सहायक बने। इसी वर्ष इनका राजयोग प्रबल हुआ।

अकबर की प्रथम गुजरात विजय के दौरान बन्दी बनाया गया सुलतान मुजफ्फर किसी तरह भाग निकला। सेना एकत्र कर, गुजरात के अधिकांश भाग पर उसने अधिकार कर लिया था। उसे दबाने के लिए अब्दुर्रहीम को भेजा गया था। इन्होने बिना सहायता की प्रतीक्षा किए, दस हजार सैनिकों से ही मुजफ्फर की एक लाख पैदल और चालीस हजार सवार सेना को पराजित कर अपने अद्भुत शौर्य, निर्भयता और सैन्य-दक्षता का परिचय दिया। इससे इनका यश चतुर्दिक् फैल गया। अकबर ने प्रसन्न होकर जनवरी, 1584 को इन्हें खानखानाँ की उपाधि और पाँच हजारी मनसब दिया। इसके बाद कई बार इन्होंने मुजफ्फर को दंडित किया।

इस विजय की खुशी मे खानखानाँ ने अपना सर्वस्व, यहाँ तक कि कलमदान तक संगी-साथियों में बाँट दिया था। मुगल शासन की सर्वोच्च उपाधि 'वकील' भी इन्हें टोडरमल के पश्चात् मिली। गुजरात की जागीर कोका को मिलने पर इन्हें जौनपुर की जागीर मिली। अपने पराक्रम से सिंध पर विजय प्राप्त कर मुलतान की जागीर पाई। इस बीच अवसर निकालकर खानखानाँ ने तुर्की भाषा मे लिखे बाबर के आत्मचरित 'तुजुके बाबरी' का फारसी मे अनुवाद कर लिया। काबुल और कश्मीर से लौटते समय उसने यह अनुवाद अकबर को सुनाया। अकबर बेहद प्रसन्न हुआ। मुस्लिम इतिहासकारो का मत है, अब्दुर्रहीम की प्रसिद्धि इस अनुवाद के कारण भी हुई।

1593 मे खानखानाँ को दक्षिण विजय का दायित्व सौंपा गया। इस कार्य के लिए शाहजादा मुराद को भी भेजा गया था। वह चाहता था यह अभियान गुजरात के रास्ते से हो, किन्तु खानखानाँ ने मालवा का मार्ग चुना। इससे मुराद रुष्ट हो गया। अन्तत: दोनों सेनानायक अहमदनगर से तीस कोस पर चाँद नामक स्थान पर मिले। किन्तु यह भेंट मैत्रीपूर्ण न थी। इस अनबन का परिणाम यह हुआ कि अहमदनगर मे शाही सेना को चाँद बीबी का कड़ा प्रतिरोध सहना पड़ा और संधि के लिए विवश होना पड़ा।

दक्षिण के सैन्य अभियान की प्रगति असंतोषप्रद थी। शाहज़ादा मुराद और खानखानाँ का विग्रह पूर्ववत् था। वस्तुतः मुराद आवारा और अहंकारी था। सादिक़ खाँ जैसे ईर्ष्यालु सलाहकार उसे भड़काते रहते थे। बदाउनी ने उसकी आलोचना करते हुए कहा है—"वह अपने को 'पका अंगूर' कहकर शेखी बघारता था, जबकि वह अभी अनपका अंगूर भी नहीं था (तारीख़-ए-बदाउनी)।

खानखानाँ ने अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुंडा की सम्मिलित सेना को पराजित किया। विजय की खुशी में लूटा हुआ धन सैनिकों में बाँट दिया। सादिक़ खाँ के भड़काने पर मुराद ने इनके विरुद्ध बादशाह के पास शिकायतें भेजीं। अकबर ने इन्हें बुलाकर शेख अबुल फ़ज़ल को दक्षिण का सेनापति बनाकर भेजा। सन् 1598 में खानखानाँ के नवयुवक पुत्र हैदरक़ुली का देहान्त हो गया। वह अति मद्यपान का शिकार हुआ। इसी वर्ष बादशाह लाहौर से आगरा आ रहे थे तभी *खान आज़म और मिर्ज़ा अज़ीज़ की बहिन और खानखाना की बेगम* महाबानो सख्त बीमार हो गईं और अम्बाला में उसकी मृत्यु हो गई। अकबर को इसका बड़ा दुःख हुआ, क्योंकि वह दूध-शरीक बहिन थी।

मई 1599 को शाहज़ादा मुराद की मिर्गी के कारण मृत्यु हो गई। उसके स्थान पर अकबर ने शाहज़ादा दानियाल और अबुल फ़ज़्ल के स्थान पर अब्दुर्रहीम को भेजा। खानखानाँ की जाना बेगम नामक कन्या का शाहज़ादा दानियाल से विवाह कर दिया गया था। फ़िरिश्ता (तारीख़-ए-फ़िरिश्ता) के अनुसार अगस्त, 1600 में बिना कड़े प्रतिरोध के अहमदनगर पर अधिकार कर लिया गया। आज़ाद (अकबरी दरबार) ने खानखानाँ और अबुल फ़ज़्ल जैसे घनिष्ठ मित्रों की प्रतिद्वन्द्विता का संकेत किया है। अकबर ने शेख को बुला लिया। शाहज़ादा सलीम के आदेश पर ओरछा के बुंदेला राजा वीरसिंह देव ने आगरा जाते हुए अबुल फ़ज़ल का वध कर डाला। उसकी मृत्यु के पश्चात् दक्षिण का सारा भार खानखानाँ पर आ गया। उसने दानियाल का विवाह आदिल खाँ की बेटी से भी कराया।

खानखानाँ ने बुद्धि और चातुर्य से दक्षिण का अधिकांश भाग जीत लिया। बुरहानपुर, अहमदनगर और बरार को मिलाकर खान देश बनाया गया जिसका सूबेदार दानियाल और वज़ीर खानखानाँ नियुक्त हुआ। दानियाल असंयत और असाध्य मद्यप था। अकबर और खानखानाँ ने उसे सुधारने और नियंत्रित करने का यत्न किया, किन्तु मद्यपान से रोकने के लिए जो व्यक्ति नियुक्त किये गये, वे

भ्रष्ट थे। गुप्त रूप से इस विष को दानियाल तक पहुँचाते थे। अप्रैल, 1604 में, बुरहानपुर में उसकी मृत्यु हो गई। अकबर, खानखानां और जाना बेगम को इससे बड़ा आघात लगा और उनके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। जाना बेगम ने सती होना चाहा, किन्तु खानखानां ने बड़ी कठिनाई से रोका। उसके शेष दिन संताप में व्यतीत हुए। दानियाल की मृत्यु के पश्चात् दक्षिण का पूरा अधिकार खानखाना को मिल गया। यहाँ तक खानखानां ने वैभव, समृद्धि और अधिकार सम्पन्न जीवन को जिया और भोगा। अकबर के शासन काल में इन्हें भरपूर सम्मान और पद मिले।

27 अक्तूबर 1605 को अकबर की मृत्यु के पश्चात् शाहजादा सलीम जहाँगीर के नाम से सिंहासन पर बैठा। इस समय खानखानां की आयु 41 वर्ष की थी। जहाँगीर ने उन्हें अपने पद पर रहने दिया। जहाँगीर ने (तुजुके जहाँगीरी, भाग 1, पृ० 147) दरबार में खानखाना के उपस्थित होने का रोचक वर्णन किया है—"एक पहर दिन चढ़ा था कि खानखानां जो मेरी अतालिकी के अधिकार से सम्मानित था, बुरहानपुर से आकर सेवा में उपस्थित हुआ। वह इतना आनन्दित और उत्साहपूर्ण था कि वह नहीं जानता था कि वह पाँव से आया है या सिर से। उसने व्याकुलता से अपने को मेरे पैरों में डाल दिया और मैंने दयालुता में उसको उठाकर छाती से लगाया और उसका मुख चूमा। उसने मोतियों के दो हार, कई हीरे और माणिक भेंट किये, जिनका मूल्य तीन लाख रुपये था। इनके अतिरिक्त बहुत सी अन्य वस्तुएँ और सौगातें भेंट कीं।" बादशाह ने भी खानखानां को एक अद्वितीय घोड़ा, लड़ने में अद्वितीय 'फ़तह' नामक हाथी, बीस और हाथियों सहित भेंट दिया। कुछ दिनों के पश्चात् खिलअत, कमर में लगाने की जड़ाऊ तलवार और म्हासे का हाथी भी प्रदान किया गया। जहाँगीर से समग्र दक्षिण जीतने का वायदा करके खानखानां पुनः दक्षिण लौट गये। खाफ़ी खाँ (आज़ाद, अकबरी दरबार) ने लिखा है—"खानखानां पहले दीवान थे। अब उन्हें 'वज़ीर-उल् मुल्क' की पदवी और पंच हजारी मनसब मिला था।"

खानखानां बुढ़ाने लगे थे। मुराद की तरह शाहजादा परवेज़ से इनकी नहीं पटी। इसके अतिरिक्त सहायकों की दगाबाजी और अपनी नासमझी से पराजित हुए। जो खानखानां अपराजेय रहा, वह तिरसठ वर्ष की आयु में बालाघाट में पराजित हुआ। अहमदनगर हाथ से निकल गया तो मुराद को तरह परवेज़ ने पिता को लिखा,

या तो मुझे बुला लें या खानखानाँ को। खानजहाँ लोदी, जिसके कहने पर खानखाना बुलाया गया, दक्षिण में हार गया। तब पुनः खानखाना को दक्षिण भेजा गया। इस अवसर पर उनका मनसब छह हजारी का हो गया। जड़ाऊ तलवार, हाथी एवं इराकी घोड़ा भी भेंट में मिला। पुत्र ऐरच को 'शाहनवाज खाँ' की उपाधि, तीन हजारी जात और सवार का मनसब, जड़ाऊपेटी, खिलअत और घोड़े, दूसरे पुत्र दाराब को गाजीपुर की जागीर सहित पाँच सौ जाती या व्यक्तिगत मनसब प्रदान किया। जहाँगीर ने छोटे बेटे रहमान दाद को भी मनसब से वंचित नहीं रखा।

अब पिता व्यवस्था करता था, पुत्र राज्यों को जीतते थे। शाहनवाज ने अम्बर को पराजित किया। कुछ समय उपरान्त शाहजादा खुर्रम (शाहजहाँ) 'शाह' की उपाधि प्राप्त कर, परवेज के स्थान पर बुरहानपुर आया। उसकी सुव्यवस्था से दक्षिण का प्रबन्ध संतोषजनक हो गया। खानखानाँ के पुत्रों ने दक्षिण में वीरता दिखाकर वंश की कीर्ति को पुनः अर्जित किया। खानखानाँ के पुत्र अमरउल्ला ने सेना लेकर गोंडवाने की हीरे की खान पर अधिकार कर लिया। उन्हीं दिनों बादशाह ने खानखानाँ की पोती से शाहजहाँ का विवाह कर दिया। दक्षिण से लौटने पर बादशाह ने खुर्रम पर मोती-जवाहर न्यौछावर किये तथा तीस हजारी का मनसब और दरबार में कुर्सी पर बैठने का मनसब कर दिया।

सन् 1618 में बादशाह ने सात हजारी जात, सात हजार सवार का मनसब, खासा खिलअत, खासा हाथी, कमरपट्ट सहित जड़ाऊ तलवार, खानदेश तथा दक्षिण की सूबेदारी प्रदान की। अमीरों में यह मनसब अभी तक किसी को प्राप्त नहीं हुआ था।

खानखानाँ अपने यश और प्रताप की चरम सीमा पर पहुँच चुके थे, किन्तु वृद्धावस्था में एक के बाद एक आपदाएँ आती गईं, जो बूढ़े सिपहसालार को तोड़ती चली गईं। सन् 1618 में युवा पुत्र मिर्जा ऐरच, जिसकी योग्यता और शौर्य को देखकर अकबर ने 'बहादुर' और जहाँगीर ने 'शाहनवाज खाँ' की उपाधि दी थी और जिसे खानखानाँ का प्रतिरूप माना जाता था; अति मद्यपान से मर गया। दूसरे ही वर्ष छोटा पुत्र रहमानदाद अति सेवा-भावी और उत्साही होने से ज्वर की स्थिति में ही शत्रु सेना से लड़ने चला गया। जीतकर लौटते समय हवा खाकर मर गया। जहाँगीर ने 'तुजुके जहाँगीरी' में लिखा है—"जवान खूब लायक था। तमाम जगह उसका यही मनोरथ रहता था कि अपनी

तलवार का चमत्कार दिखाये। जबकि मुझे ही कष्ट हुआ तो उसके बूढ़े बाप के दिल पर तो क्या गुज़रा होगा। अभी शाहनवाज खाँ का ज़ख्म ही न भरा था कि यह दूसरा घाव लगा।"

इन दुःखों से अब्दुर्रहीम इतने टूट चुके थे कि उदासीनता के कारण दक्षिण के प्रबन्ध में ढिलाई आ गई। उसका लाभ शत्रुओं को मिला। उन्होंने बहुत सा भाग दबा लिया। रसद-पूर्ति बन्द करके बुरहानपुर में शाही लश्कर को घेर लिया। इधर खानखानाँ सहायता के लिए निरन्तर लिख रहे थे, किन्तु उस समय बादशाह काश्मीर में थे और शाहजहाँ कोट कांगड़े में उलझा हुआ था। खीज कर यहाँ तक लिख डाला कि मैं घोर संकट में हूँ और मैंने जौहर करके मर जाने का निश्चय किया है। जहाँगीर की आज्ञा से शाहजहाँ ने आकर इन्हें संकट-मुक्त किया।

लेकिन दुर्भाग्य ने भविष्य में भी पीछा किया। नूरजहाँ के निरंकुश शासिका बनने पर परिस्थितियाँ बदलीं। उसने छोटे शाहजादे शहरयार (जो उसका दामाद भी था) को प्रमुखता देना प्रारंभ कर दिया। विवश होकर खानखानाँ को शाहजहाँ का साथ देना पड़ा। सुशील, आज्ञाकारी और प्रतापी शाहजहाँ विद्रोही हो गया। इधर खानखानाँ के बहुत पुराने और विश्वसनीय सेवक मुहम्मद मासूम ने जहाँगीर के पास गुप्त रूप से यह समाचार पहुँचाया कि खानखानाँ अन्दर ही अन्दर दक्षिण के अमीरों के साथ मिला हुआ है। मलिक अम्बर ने खानखानाँ के नाम जो पत्र भेजे थे, वे लखनऊ वाले शेख अब्दुल सलाम के पास हैं। जहाँगीर की आज्ञा से शेख को बन्दी बनाया गया। बहुत अधिक मार खाई, किन्तु उसने रहस्य खोलकर न दिया। खानखानाँ और दारा दक्षिण से शाहजहाँ के साथ आये। उस समय (1623 में) जहाँगीर ने खानखानाँ के लिए अपमानजनक शब्द लिखे हैं—"जबकि खानखानाँ जैसा अमीर जो अतालिकी के ऊँचे पद पर पहुँचा हुआ था, 70 वर्ष की आयु में अपना मुँह नमकहरामी से काला कर ले तो क्या गिला है? उसके बाप ने भी अन्तिम अवस्था में मेरे बाप के साथ ऐसा ही बर्ताव किया था। यह भी इस उम्र में बाप का अनुगामी होकर हमेशा के लिए कलंकित हुआ। भेड़िये का बच्चा आदमियों में बड़ा होकर भी अंत में भेड़िया ही रहता है (तुज़ुके जहाँगीरी, भाग 2, पृ० 250)।

बाप-बेटे की मदांधता, विवशताजन्य तनाव और असहृदय सौतेली माँ की स्वार्थमयी महत्त्वाकांक्षा के पाटों के बीच खानखानाँ और उसके परिवार को पिसना पड़ा। दुनियादारी की शतरंजी चालों का कुशल खिलाड़ी, स्वयं मोहरा बन गया।

इसी समय महावत खाँ के नाम लिखा गया खानखानाँ का पत्र शाहजहाँ की पकड़ में आ गया और पुत्र दाराब खाँ सहित उन्हें बन्दी बना लिया गया। बाद में दोनों को बुलाकर तथा वचन लेकर छोड़ दिया। घटना-चक्र ऐसा घूमा कि महावत खाँ की चाल पर इन्हें सुलतान परवेज का साथ देना पड़ा। इससे शाहजहाँ रुष्ट हो गया। हताश और कुंठित शाहजहाँ ने दाराब खाँ के पुत्र और भतीजे को मार डाला। अब सभी लोग खानखानाँ की ओर से सचेत रहते थे। इन्हें नज़रबन्द करके परवेज के खेमे के पास रखा गया। इस बीच बादशाह और शाहजहाँ की सेना में कई बार मुठभेड़ें हुईं। भयानक रक्तपात हुआ। पीछे हटते हुए उसने शपथ और वचन लेकर, बंगाल का शासन भार दाराब खाँ को सौंप दिया था। शाहजहाँ के बिहार की ओर चले जाने पर वह अशक्त हो गया। बादशाह की सेना ने बंगाल पर अधिकार कर लिया। जहाँगीर की आज्ञा से दाराब खाँ का सिर काटकर, महावत खाँ ने अभागे पिता के पास भेज दिया—महावत खाँ की आज्ञा से सैनिकों ने खानखानाँ से कहा—"हुजूर ने तरबूज भेजा है।" अत्यंत दुःखी पिता ने अश्रुपूरित नेत्रों से कहा—"ठीक है। शहीदी है।"

बादशाह की सेना ने उनका धन-माल कुर्क करना चाहा। इसी की रक्षा में स्वामिभक्त राजपूत फहीम मारा गया। खानखानाँ ने इस अद्वितीय वीर को पुत्रवत् पाला था। उसकी मृत्यु भी खानखानाँ के लिए आघात थी। सन् 1625 में जहाँगीर के बुलावे पर, नतमस्तक हो, दरबार में उपस्थित हुए। जहाँगीर ने आश्वस्त करके उच्च पद दिया। पुनः खानखानाँ की उपाधि, खिलअत और कन्नौज की जागीर प्रदान की। एक इतिहासकार ने लिखा है कि उस दुनियादार बूढ़े बेशर्म ने अपनी अँगूठी में इस भाव का शेर अंकित कराया कि जहाँगीर की मेहरबानी और ख़ुदा की मदद से मुझको दुबारा जिंदगी और खानखानानी मिली है :

मरा लुत्फे जहाँगीरी जे ताई दाते रब्बानी।
दो बारः जिंदगी दादः दो बार खानखानानी॥

(मआसिरुल-उमरा, भाग 2, पृ० 196)

अगले वर्ष इतिहास-चक्र ने दूसरी करवट ली। नूरजहाँ ने महावत खाँ से बिगड़ कर जागीर और सेना का हिसाब-किताब माँगा। महावत खाँ ने बादशाह और बेगम को पृथक्-पृथक् क़ैद कर लिया। खानखानाँ को पहले दिल्ली भेजा, फिर बीच से ही लाहौर बुला लिया।

नूरजहाँ की बुद्धिमत्ता और युक्ति से महावत [redacted] अशक्त होकर भागा। खानखानाँ ने निवेदन किया कि इस नमकहराम को दंडित करने का कार्य मुझे सौंपा जाये। उसकी जागीर खानखानाँ के वेतन के नाम कर दी गयी। खानखानाँ को सात हजारी जात, सात हजार सवार का मनसब, खिलअत, तलवार, जड़ाऊ जीन सहित घोड़ा और खासा हाथी देकर जहाँगीर ने फिर उनका सम्मान किया और अजमेर का सूबा भी जागीर में दिया। लेकिन 72 वर्ष का वह वृद्ध शोक के घनत्व से इतना अशक्त हो गया था कि लाहौर में अस्वस्थ हो गया और दिल्ली पहुँचने तक दुर्बलता बहुत बढ़ गई, सन् 1627 में वह इस लोक से प्रस्थान कर गया। खानखानाँ को हुमायूँ के मकबरे के पास गाड़ा गया। उस पर लिखा था—"खान-सिपहसालार को।"

व्यक्तित्व

अब्दुर्रहीम खानखानाँ का पारिवारिक जीवन दुखद रहा। चार वर्ष की अल्प आयु में पिता से वंचित हुए। 1598 में पत्नी का निधन हुआ। यौवन-काल में पुत्री विधवा हुई। इनके जीवन को त्रासदीपूर्ण बनाकर सभी पुत्र असमय में काल-कवलित हुए। संतान-शोक, अधिकार और प्रतिष्ठा की हानि ने इन्हें जर्जर कर दिया था। विषम स्थितियों के फलस्वरूप इनके काव्य में शोक और करुण भावों की अभिव्यक्ति हुई थी।

अब्दुर्रहीम ने अपनी ज़िंदगी में बड़े उतार-चढ़ाव देखे थे। कभी नवाब, सूबेदार, वकील और सेनापति, कभी कैद की यातना भोगता हुआ अपमानित दरिद्र व्यक्ति, कभी बार-बार सम्मानित होते हुए, कभी निजी विडम्बनाओं और परिवेशजन्य विसंगतियों से टूटते हुए; अब्दुर्रहीम का व्यक्तित्व संघर्षशील रहा है। उन्होंने पीड़ा को बड़े साहस और दृढ़ता से झेला था। खानखानाँ के ऐतिहासिक जीवन-चरित्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे बुद्धिमान्, प्रतिभासम्पन्न, कार्यकुशल, योग्य सेनानायक और असाधारण वीर थे। जहाँगीर ने उनकी प्रशंसा में लिखा है—"खानखानाँ दरबार के बड़े अमीरों में से थे। अकबर के राज्य में इन्होंने बड़े-बड़े कार्य किए, जिनमें तीन प्रमुख थे—गुजरात की विजय, सुहेल के युद्ध में शत्रुओं को केवल बीस हजार सवारों से पराजित करना, सिंध और ठट्टे पर विजय।" (मआसिरुल-उमरा, भाग 2, पृ॰ 198)

वे गुणवान और बौद्धिक थे। दूसरे स्थल पर जहाँगीर ने लिखा

है —"खानखानां योग्यता और गुणों में सारे संसार में अनुपम था। अरबी, तुर्की, फारसी और हिन्दी भाषाएँ जानता था। अनेक प्रकार की विद्याओं के साथ ही भारतीय विद्याओं का अच्छा ज्ञान रखता था। फारसी और हिन्दी में बहुत अच्छी कविता करता था। पूज्य पिताजी की आज्ञा से 'वाकेआत बाबरी' का फारसी भाषा में अनुवाद किया था। कभी कोई शेर, कभी कोई रुबाई और कभी कोई गजल भी कहता था" (तुजुके जहांगीरी)। उदाहरण के लिए जहांगीर ने एक गजल और रुबाई उद्धृत भी की है।

अकबर को अब्दुर्रहीम विशेष प्रिय, अंतरंग थे। अपने एक पत्र (फ़रमान) में अकबर ने खानखानां और बीरबल को लम्बी-चौड़ी उपमा देते हुए बीरबल की मृत्यु पर शोक व्यक्त किया है—"ईश्वर इच्छा विलक्षण है। हमने भी उसका कुछ उपाय न देख कर संतोष किया और तुम भी अब संताप न करो। उस मरने वाले की जीवनावस्था में भी तुम हमारे परम मित्र और गुप्त भावों के ज्ञाता थे और तुमको हम ईश्वर के दिए हुए अलभ्य पदार्थों में से जानते थे। अब तो तुम स्वयं जान सकते हो कि तुम्हारा गनीमत होना कितने अंशों में बढ़ गया है। परमेश्वर तुमको हमारी छत्रछाया में बनाये रखे।' और जो तुमने अपने बेटों के बारे में लिखा कि जब दक्षिण आऊँ तो उन्हें कहां छोड़ जाऊँ या हुजूर में भेज दूं, सो तुम्हारा और तुम्हारी संतान का सम्बन्ध इस घर में ऐसा नहीं है कि किसी काम पर न होवें तो क्षण भर भी आंखों से दूर रहें।"

एक दूसरे पत्र में भी अकबर ने गहरी आत्मीयता व्यक्त की है। तूरान के बादशाह द्वारा भेजे गये कबूतरों की प्रशंसा करते हुए उनसे वियुक्त न होने की बात कही है। आगे लिखा है—"तुम्हारा एक नया पाहुना (खानखानां की बेगम बच्चे को जन्म देने वाली थी) भी रास्ता चल रहा है, उसके पहुँचने तक ठहरो। हम तुमको अच्छे-अच्छे कबूतर प्रदान करेंगे और उस मेहमान (नवागुन्तक) को भी इनके बच्चों में से हिस्सा मिलेगा। कदाचित् विलम्ब हुआ तो जो तुमने अपने वास्ते सोचा (कल्पना की होगी) होगा, उससे कम मिलेंगे।"

(मुनशियात अबुलफज़्ल, सं० अब्दुल समद)

अबुलफज़्ल अब्दुर्रहीम का विश्वस्त एवं हितैषी मित्र था। वे आपस में गहरा प्रेम और आदर करते थे। उसके एक पत्र का अंश है—"तुम्हारे मिलने की लालसा उतनी प्रबल है जितनी जय प्राप्ति की

प्रसन्नता है।[1] मैं क्या कहूँ इन दिनों चित्त की कैसी चिंता रही। इधर तो वियोग का दुःख, उधर गुजरात से बुरे समाचारों के पहुँचने का उद्वेग और इससे कष्ट की यह बात कि बहुत दिनों से तुम्हारा न कोई दूत आता था और न पत्र पहुँचा था। इन सबसे बढ़कर शत्रुओं की दुष्टता थी जो निंदा करके मित्रों का दुःख बढ़ाते थे।[2] परन्तु बादशाह के तेज प्रताप से अब यह दुर्दशा समाप्त हो गई और शीघ्र ही अच्छे दिन आ गये।

इसाफ की बात यह है कि तुमने बड़ी वीरता दिखाई। यह (जीत) तुमसे ही संभव हो पाई और पुरुष-सिंह ऐसा ही किया करते हैं। तलवारों और कमानों में यदि बोलने की शक्ति हो तो वे तुम्हारे भुज-बल का हजार बार बखान करें।...बहमन महीने की अंतिम तिथि को बादशाह का कटक कोड़ा घाटमपुर (आगरा से 50-60 कोस दूर) उतरा ही था कि किसना चौधरी के कासिद (धावक) बधाई लेकर पहुँचे। इसके पीछे कल्याणराय, एतमाद खाँ, निजामुद्दीन अहमद और शहाबुद्दीन अहमद की अर्जियाँ क्रम से पहुँची, जिनसे तुम्हारी पूरी बहादुरी बादशाह को ज्ञात हुई। श्रीमान् ने प्रसन्न होकर परम कृपा से बहुत शाबाशी और खानखानाँ की अपौती पदवी तुमको दी।"

(मुनशियात अबुलफजल, सं० अब्दुल समद)

निजामुद्दीन बख्शी ने 'तबकाते नासिरी' में अपने समकालीन अमीरों का परिचय दिया है। अब्दुर्रहीम का परिचय देते हुए लिखा है—"इस समय खानखानाँ की आयु 37 वर्ष की है। दस वर्ष हुए, इसने खानखानाँ का मनसब और सेनापति का पद प्राप्त किया था। इसने बहुत बड़ी-बड़ी सेवाएँ की हैं और बड़े-बड़े युद्धों में विजयी हुआ है। इस सुयोग्य और मान्य पुरुष के ज्ञान, विद्या और गुणों के सम्बन्ध में जो कुछ लिखें, वह सब सौ में से एक और बहुत में से थोड़े हैं। इसने सब लोगों पर दया करने का गुण, बड़े-बड़े विद्वानों और पंडितों की शिक्षा, फकीरों का प्रेम और कवि-हृदय मानो अपने पिता से उत्तराधिकार में पाया है। लौकिक ज्ञान और गुण की दृष्टि से इस समय दरबार में इसके जोड़ का कोई अमीर नहीं है।"

रहीम के काव्य से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि लौकिक ज्ञान में खानखानाँ अद्वितीय थे। इसके लिए खुली दृष्टि और विविध अनुभवों

---

1. यह पत्र गुजरात विजय के तुरन्त बाद लिखा गया था।
2. ईर्ष्यालुओं ने अब्दुर्रहीम के विरुद्ध उल्टी-सीधी बातें कही थीं।

से साक्षात्कार अनिवार्य है। वे उनके पास थे। आज़ाद (अकबरी दरबार, भाग 2, पृ० 379) ने इनके शील और स्वभाव की बड़ी प्रशंसा की है। ये मैत्री करने और निभाने मे सिद्ध थे। रोचक बातो और मधुर व्यवहार से लोगो को अपना बना लेते थे। चौकस इतने कि दरबार, गली-कूचो, बाज़ारो-हाटो, प्रजा-सामतो तथा न्यायालयों की हर हरकत को अपने गुप्तचरो से पता लगाते रहते थे। दूर के थानों व चौकियों से उन्हें नियमित समाचार मिलते रहते थे। समयानुकूल अपने को ढालने और परिस्थिति के अनुरूप व्यवहार करने वाले थे। इनका कथन था कि शत्रु के साथ शत्रुता भी मित्रता के रूप मे निभानी चाहिए। इनके बारे मे किसी ने शेर कहा था—

एक बित्ते का कद और दिल मे सौ गाँठ।
एक मुट्ठी हड्डी और सौ शकलें॥

खानखानाँ तीस वर्ष दक्षिण में रहे। उनके सबके साथ अच्छे सम्बन्ध थे। इसलिए उन पर कपटी, विद्रोही के आरोप लगाये जाते रहे। अबुलफ़ज़ल ने उन्हें बाग़ी तक कहा।

एक प्रसग से तो यह प्रतीत होता है कि खानखानाँ के उदार हृदय मे शत्रु के प्रति अपकार की भावना नही थी। कहा जाता है कि पंडित-राज जगन्नाथ त्रिशूली ने एक दिन उन्हें स्वरचित एक श्लोक सुनाया जो इस प्रकार था—

प्राप्य चलानधिकारान् शत्रुषु मित्रेषु बंधुवर्गेषु।
नापकृतं नोपकृतं न सत्कृतं किं कृतं तेन॥

(जिसने चल अधिकार पाकर शत्रु, मित्र और भाई-बंदों का क्रमशः अपकार, उपकार और सत्कार नही किया, उसने कुछ नही किया।)
खानखानाँ ने दूसरी पंक्ति को बदल कर इस प्रकार कर दिया—

नोपकृतं नोपकृतं नोपकृतं किं कृतं तेन॥

(अधिकार पाकर शत्रु, मित्र सभी का उपकार करना चाहिए।)

असीम ऐश्वर्य भोगते हुए वे विनम्र बने रहे। कहा जाता है खानखानाँ की उपाधि प्राप्त होने पर इन्होंने कई उपदेश एक पत्र पर लिख कर नौकरों को दे दिए थे। जब ये किसी पर क्रोध करते, नौकर वह पत्र पढ़ाकर, इन्हें ठंडा कर देते थे।

खानखानाँ बादशाहो ठसक के साथ जीते थे। शाहज़ादों के लिए नियत हुमा पक्षी का पर सिर पर धारण करते थे। आगरा की हवेली को इन्होंने बड़े वैभव तथा साज-सज्जा के साथ अलंकृत कर रखा था।

उसमें बैठने योग्य सिंहासन बनवा कर सोने के चोबों पर कारचोबी शामियाना लगवाया था, जिसमें मोतियों की झालरें लगी थीं। छत्र, चँवर आदि राजचिह्न भी थे। कुछ चुगलखोरों ने राजसी वैभव और प्रतीक धारण करने की शिकायत अकबर से की। अकबर स्वयं आया—इन प्रतीकों के प्रयोग का कारण पूछा। इन्होंने अविलम्ब उत्तर दिया—"ये सभी हुजूर के लिए ही तैयार करके रखे हैं ताकि जब आप आवें, मुझे दूसरों से माँगने की लज्जा न उठानी पड़े।" यह सुनकर बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ।

खानखानाँ कला-प्रेमी थे। तानसेन के संगीत पर मुग्ध होकर उन्होंने अपना प्रसिद्ध दोहा लिखा था—

> बिधना यह जिय जानि कै, सेसहिं दिये न कान।
> धरा मेरु सब डोलिहैं, तानसेन के तान॥

अबुलफजल की विद्वत्ता और काव्य-प्रेम के बड़े प्रशंसक थे। गुजरात में बनाया 'बाग-फतह', 'शाहबाड़ी', 'आगरा की हवेली', 'अलवर का त्रिपोलिया' उनके स्थापत्य-प्रेम के प्रतीक थे। जहाँगीर बाग-फतह और शाह-बाड़ी के सौंदर्य को देखकर मुग्ध हो गया था।

वे सही अर्थों में सौंदर्य और कला के पारखी थे। एक दृष्टान्त से इसकी पुष्टि होती है—एक दिन खानखानाँ दरबार जा रहे थे। एक चित्रकार ने कोई चित्र लाकर भेंट किया। उस चित्र में कुर्सी पर बैठी एक सद्यःस्नाता को सिर झुकाकर केश झटकारते दिखाया गया था। नीचे दासी झाँवें से पैरों को रगड़ रही थी। खानखानाँ चित्र देखकर दरबार चले गये। लौटकर चित्रकार को बुलाया और पाँच हजार रुपये दिए। चित्रकार ने पूछा—"हुजूर! ऐसी चित्र में क्या विशेषता है जिसके कारण मुझे पुरस्कृत किया गया है?" खानखाना ने कहा—"इसमें स्त्री के अधरों की मुस्कराहट और चेहरे के भाव बहुत सुंदर हैं। और इनका रहस्य पैरों में होने वाली गुदगुदाहट में छिपा है। ऐसी कोमल भाव-व्यंजना के लिए पाँच हजार तो क्या, पाँच लाख भी कम है।" चित्रकार ने कहा—"बस हुजूर, मैं अपना पुरस्कार पा गया। मैं इतने अमीरों के यहाँ गया पर आपके अतिरिक्त कोई और इस सौंदर्य-बोध का कारण नहीं बता सका था।"

यह घटना उनके सूक्ष्म सौंदर्य-बोध की परिचायक है।

बहुभाषाविद्

रहीम ने अनेक भाषाओं में दक्षता प्राप्त की थी और बड़ी सफलता के साथ तुर्की, फ़ारसी, अरबी, संस्कृत और हिन्दी का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया था। अवधी, ब्रज और खड़ी बोली पर उनका असाधारण अधिकार था। तीनों को रचना-प्रक्रिया का माध्यम बनाते हुए, इनकी भाषा का निखार और अभिव्यक्ति-प्रवाह असंदिग्ध है। उनके काव्य में भाषा-वैविध्य, छन्द-वैविध्य और विषय-वैविध्य है। अलंकारों का युक्तिसंगत कलात्मक प्रयोग है। इन विशेषताओं के कारण ये अकबरी दरबार के अप्रतिम रचनाकार थे। 'मआसिरुल-उमरा' में लिखा है कि वे विश्व की अधिकांश भाषाओं में बातचीत कर सकते थे। तुर्की और फ़ारसी उनकी मातृभाषाएँ थीं। अरबी में इतना अभ्यास था कि मूल भाषा को पढ़े बिना उसका अनुवाद इस प्रकार करते जाते थे कि मानो वे अनुवाद ही पढ़ रहे हों। कहा जाता है, एक बार मक्के के शरीफ (महंत) ने अकबर को एक पत्र भेजा था जिसमें अरबी के कठिन शब्द भर दिए थे। अकबर ने अबुलफ़ज़ल, फ़तहउल्ला शीराजी और ख़ानख़ानाँ को उसे फ़ारसी में अनूदित करने की आज्ञा दी। अबुलफ़ज़ल और फतहउल्ला तो कोशों की सहायता लेने के लिए उस पत्र को ले जाने लगे, किन्तु ख़ानख़ानाँ वहीं दीपक के पास जाकर पढ़ने लगे और साथ ही अनुवाद करने लगे।

अकबर की आज्ञा से उन्होंने यूरोप की भाषाओं (फ्रेंच, अंग्रेजी आदि) का अच्छा अभ्यास कर लिया था। उन देशों से पत्र-व्यवहार करने में ख़ानख़ानाँ की सहायता ली जाती थी। ब्लाखमान ने लिखा है—"ख़ानख़ाना 'रहीम' के उपनाम से फ़ारसी तथा साथ ही अरबी, तुर्की, संस्कृत और हिन्दी में सप्रवाह लिखता था और अपने समय का मैसनास माना जाता था।" (आईन-ए-अकबरी, खंड 1, पृ० 332)

अपनी फ़ारसी रचनाओं में 'रहीम' तख़ल्लुस (उपनाम) रखा था, उसे हिन्दी की रचनाओं में रहने दिया। उस समय यह कहा जाता था कि अकबरी दरबार के लोगों में जितनी अधिक काव्य-रचना इन्होंने की उतनी सम्भवतया किसी और ने नहीं। उनकी यह काव्य-रचना गुण में भी सबसे बढ़-चढ़कर थी। (मआसिरे रहीमी, भाग 2, पृ० 561)

दानशील

इनकी दानशीलता, लोकप्रियता और काव्य-रुझान की प्रशंसा समकालीन कवियों, शायरों और इतिहासकारों ने मुक्त कंठ से की है। ये हिन्दी के

कवियों से घिरे रहते थे और समय-समय पर उन्हें पुरस्कृत करते रहते थे। हिन्दी काव्य-रचना के प्रति वे पूरी तरह समर्पित थे। एक इतिहासकार (अब्दुल बाकी) ने यहाँ तक लिखा है कि इन्होंने जितना हिन्दी कवियों को पुरस्कृत किया, उसका दसवाँ हिस्सा भी फारसी कवियों को नहीं किया। इसके अतिरिक्त फारसी में जितना काव्य लिखा उसका कई गुना हिन्दी में लिखा।

इनकी दानशीलता का उल्लेख करते हुए आज़ाद ने लिखा है—"विद्वानों, फकीरों और शेखों को प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से हज़ारों रुपये, अशर्फियाँ और धन-सम्पत्ति देता था। कवियों और गुणियों का तो मानो माता-पिता था। जो आता था, उसे लगता मानो अपने घर आया हो और इतना धन पाता था कि उसे बादशाह के दरबार में जाने की आवश्यकता नहीं होती थी।"

'साकीनामा' की रचना पर खानखानाँ ने मुल्ला शिकेबी को अठारह सहस्र रुपये का पुरस्कार दिया था। शिकेबी ने सिंध-युद्ध के विवरण की मसनवी भी लिखी थी। उसके एक शेर, जिसका भाव था—जो हुमा पक्षी (मिर्ज़ा जानी) आकाश में प्रसन्नतापूर्वक विहार कर रहा था, उसे पकड़ा और फिर जाल में से छोड़ दिया :—

हुमाए कि बर चर्ख कर दी खिराम।
गिरफ्ती वो आज़ाद कर दी मुदाम॥

पर एक हज़ार अशर्फी प्रदान की। संयोग से, इस शेर को पढ़ते समय मिर्ज़ा जानी भी दरबार में उपस्थित था। उसने भी प्रसन्न होकर एक हज़ार अशर्फी दी और कहा—"ईश्वर की कृपा [redacted] कि उसने मुझे हुमा पक्षी बनाया। यदि यह मुझे गीदड़ भी कह डालता, तो भला [redacted] इसकी ज़बान पकड़ सकता था।"

खानखानाँ से मिलने इराक से मीर मुग़ीस माहवी हमदानी भारत आया। खानखानाँ से बहुत धन पाकर इराक लौट गया। अमीर रफीउद्दीन हैदर 'राफ़ई' के दो-तीन बार में ही खानखानाँ से एक लाख रुपये प्राप्त किये थे। काशी मक्रकारी को खानखानाँ से इतना पुरस्कार मिला था कि स्वदेश लौटते समय, वही धन उसकी मृत्यु का कारण बन गया। मुल्ला मुहम्मद रज़ा 'नवी' को उसके 'साकीनामा' पर दस सहस्र रुपये और एक हाथी पुरस्कार में मिला था। इनके अलावा फाहमी उर्मिज़ी, हैदर तबरेज़ी, उसका पुत्र सामरी, दाश्निगी इस्फहानी आदि शायर खानखानाँ द्वारा पुरस्कृत हुए थे।

हिन्दी के अधिकांश कवि इनके द्वारा पुरस्कृत हुए थे। सर्वाधिक राशि—छत्तीस लाख रुपये—कवि गंग को एक छन्द पर प्राप्त हुई थी।

इनकी दानशीलता और उदारता मिथक और लोकाख्यान बन गई थी। 'मआसिरुल-उमरा', 'मआसिरे रहीमी', तारीख चगत्ता' आदि समकालीन ग्रंथों में अनेक किस्सों का उल्लेख हुआ है। उनमें से कुछ हैं :—

1. कहा जाता है एक दिन खानखानाँ परतों पर हस्ताक्षर कर रहे थे। एक पियादे को परत पर भूल से एक हजार दाम के स्थान पर एक हजार तनका (रुपया) लिख दिया। भूल प्रतीत होने पर उसे बदला नहीं।

2. कई बार कवियों को उनके वजन के बराबर सोना तोल कर दिया।

3. 'तज़करे हुसेनी' (मीर हुसेन दोस्त सभलो) में लिखा है कि किसी मनुष्य ने एक पुरुष को व्याकुल फिरता देखकर कारण पूछा। उसने कहा—मैं एक स्त्री पर मोहित हूँ, परन्तु वह एक लाख रुपये लिए बिना बात नहीं करती। कोई उपाय हो तो बताओ। उसने कहा, "यदि काव्य-रचना करना जानते हो तो अपना वृत्तान्त लिख कर खानखानाँ के पास चले जाओ।" वह एक छंद बना कर ले गया, जिसका भाव था—हे उदार खानखाना! एक चन्द्रमुखी मेरी प्यारी है। वह जान माँगे तो कुछ सोच नहीं है। रुपया माँगती है, यही मुश्किल है।

खानखानाँ ने मुस्करा कर पूछा—"कितना माँगती है?" उसने कहा—"एक लाख।" खानखानाँ ने एक लाख उस स्त्री को देने के लिए और छह हजार रुपये उसकी मौज के लिए दिए।

4. 'तारीख चगत्ता' में लिखा है—एक दिन एक निर्धन ब्राह्मण खानखानाँ की ड्योढ़ी पर आया। उसने दरबान से कहा—"नवाब से कहो, तुम्हारा साढ़ू आया है।" खानखानाँ ने उसे बड़े सम्मान के साथ अपने पास बैठाया। किसी ने पूछा—"यह मँगता आपका साढ़ू कैसे हुआ?" खानखानाँ ने उत्तर दिया—"सम्पत्ति और विपत्ति दो बहनें हैं। पहली हमारे घर है, दूसरी इसके। इस नाते साढ़ू हुआ।" नवाब ने उसे खिलअत पहनाई। सुनहले साज सहित खासा घोड़ा और धन-सम्पत्ति प्रदान की।

5. 'वंश भास्कर' (सूर्यमल्ल मिश्रण) में लिखा है—एक दिन दुर्बल ब्राह्मण भूखा-प्यासा मुसलमानों को कोस रहा था। खानखानाँ ने कहा—"तुम्हें खाना-पीना काफी मिलेगा, तुम इस प्रकार न कोसो।"

ब्राह्मण ने अपनी पगडी उनकी ओर उछालते हुए कहा—"हमारे शास्त्र का कहना है जिसकी बात पर प्रसन्न हो, उसे कुछ दो।" खानखानाँ ने उसकी मैली पगडी सिर पर धारण की और उसे पर्याप्त धन दिया।

6 किसी ने खानखानाँ की पालकी मे लोहे की पसेरी (किसी-किसी ग्रंथ मे गोला लिखा है) फेंकी। खानखाना ने बदले मे उतना सोना दिया। किसी ने पूछा—उसने तो आपको मारने का कार्य किया था। इन्होने उत्तर दिया—नही, उसने हमें पारस समझा था।

7. पसेरी से मिलता-जुलता एक वृत्तान्त है—एक दिन खानखानाँ सवारी से उतर रहे थे। बगल मे तवा लिए हुए एक बुढिया आई और तवा निकाल कर इनके शरीर से मलने लगी। सैनिक दौडे—खानखाना ने उन्हे रोक दिया और तवे के बराबर सोना तुलवा दिया। मुसाहबो के पूछने पर उत्तर दिया कि इसने सुन रखा था कि बादशाह और अमीर लोग पारस हुआ करते हैं। वह इसे परखना चाहती थी।

8. खानखानाँ दरबार की ओर जा रहे थे। एक सवार सैनिकों जैसे हथियार लगाकर सामने आया और सलाम करके खडा हो गया। पूछने पर उसने उत्तर दिया—"नौकरी करना चाहता हूँ।" पगडी पर दो कीलें लगाने का रहस्य पूछने पर उसने बताया कि एक कील उस आदमी के लिए है जो नौकर रखे पर वेतन न दे। दूसरी, उस नौकर के वास्ते है जो वेतन लेता हो, पर काम करने मे जी चुराता हो। खानखानाँ ने उसका वेतन निश्चित करके, उसको उम्रभर का वेतन देकर कहा—"लीजिए हजरत, एक कील का बोझ तो सिर से उतार दीजिए। दूसरी कील का अधिकार आपको है।"

9 कहा जाता है खानखाना और गोस्वामी तुलसीदास मे परस्पर बडा स्नेह था। एक निर्धन ब्राह्मण को अपनी कन्या के विवाह की बडी चिंता थी। एक पैसा भी पास नही था। उसने तुलसीदास के पास आकर अपना दुखडा रोया। तुलसीदास ने निम्नलिखित पंक्ति लिख कर उसे खानखानाँ के पास भेजा :—

सुरतिय नरतिय नागतिय, सब चाहत अस होय।

खानखानाँ ने ब्राह्मण को बहुत सा धन दिया और उस पंक्ति की पूर्ति करके तुलसीदास के पास भेजी—

गोद लिए हुलसी फिरै, तुलसी सो सुत होय॥

10. जागीर छिन जाने पर रहीम के पास कुछ नहीं बचा। याचक फिर भी घेरे रहते। एक ने घेरा तो उसे रीवा नरेश के पास

निम्नलिखित दोहा लिख कर भेजा—

चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध-नरेस।
जा पर विपदा पड़त है, सो आवत यहि देस॥

रीवा नरेश ने उस याचक को एक लाख रुपये दिए।

11. जहाँगीर से परास्त होकर चित्तौड़ के महाराणा अमरसिंह जंगल में घूमते-फिरते थे। एक दिन व्यथित होकर खानखानाँ के पास निम्न दोहे भेजे :—

हाड़ा कूरम राव बड़, गोखाँ जोख करत।
कहियो खानखानाँ ने, बनचर हुआ फिरत॥
तुवरा-सु दिल्ली गई, राठौड़ा कनवज्ज।
राणपयं पै खान ने, वह दिन दीसे अज्ज॥

खानखानाँ ने उनका उत्साह वर्द्धन करते हुए लिख भेजा—

धर रहसी रहसो धरम, खिस जाते खुरमाण।
अमर बिसंभर ऊपरै, नहचो राखो राण॥[1]

हुआ भी ऐसा ही।

12. खानखाना का दस्तरख्वान बहुत व्यापक होता था। अनेक प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन परोसे जाते। जिस प्रकार इनकी उदारता से सभी प्रकार के लोगों को लाभ पहुँचता था, उसी प्रकार इनका दस्तरख्वान भी सदा लोगों के लिए खुला रहता था। जिस समय खानखानाँ दस्तरख्वान पर बैठते, उस समय मकानों में अपने-अपने पद और मर्यादा के अनुसार सैकड़ों व्यक्ति भोजन करने के लिए बैठते थे।

13. एक दिन जहाँगीर तीर चला रहा था। किसी भाट के बढ़-चढ़ कर व्यंग्य बोलने पर रुष्ट होकर आज्ञा दी कि इसे हाथी के पैरों तले कुचलवा दो। उसने हाज़िर-जवाबी से निवेदन किया—"हुजूर, इस नाचीज़ के लिए हाथी की क्या आवश्यकता है? एक चूहे या चिड़े का पैर पर्याप्त है। हाथी का पैर तो खानखानाँ के लिए चाहिए, जो बड़े आदमी हैं।" जहाँगीर ने प्रतिक्रिया जानने के लिए खानखानाँ की ओर देखा। खानखानाँ ने उत्तर दिया—हुजूर के सदके से, ईश्वर ने मुझ जैसे तुच्छ व्यक्ति को ऐसा कर दिया कि वह मुझे बड़ा आदमी

1. एक ग्रंथ में लिखा गया है कि खानखानाँ राणा प्रताप की देशभक्ति और स्वाभिमान के प्रशंसक थे। यह दोहा कुछ बदले पाठ के साथ उनके पास भेजा गया था—

ध्रम रहसी, रहसी धरा, खिस जासी खुरसाण।
अमर बिसंभर ऊपरै, राखियो नहचो राण॥

समझता है। मैंने उसी समय ईश्वर को धन्यवाद दिया और कहा कि जब इसका अपराध क्षमा हो, तब इसे पाँच हज़ार रुपये पुरस्कार दे देना। हुज़ूर की जान और माल को दुआ देगा।

14 एक बार दरबार में एक भाट ने चकवा-चकवी के माध्यम से कवित्त कहा, जिसका आशय था—ईश्वर करे, खानखाना की विजय का घोड़ा सुमेरु पर्वत तक जा पहुँचे। वह दानी सुमेरु पर्वत को दान दे देगा। फिर सूर्यास्त न होगा, इसलिए सदा दिन ही दिन रहेगा। हम लोगों का वियोग न होगा और आनन्द ही आनन्द रहेगा। खानखाना ने पूछा—"पंडितजी! आपकी आयु क्या है?" उसने निवेदन किया—"35 वर्ष।" उसकी आयु 100 वर्ष की अनुमानित करके पाँच रुपये रोज के हिसाब से कुल राशि खज़ाने से दिला दी।

15 एक बार खानखाना आगरा से बुरहानपुर की ओर चले। पहले ही पड़ाव पर डेरे पड़े। सन्ध्या समय शामियाने में दरबार लगा था। एक मस्त किन्तु दरिद्र व्यक्ति एक शेर पढ़ते हुए निकला। जिसका आशय था—मुनइम (धनी) व्यक्ति के लिए पहाड़, जंगल और उजाड़ स्थान में किसी चीज़ का अभाव नहीं होता। वह जहाँ जाता है, वहीं डेरा गाड़ लेता है और बारगाह बना लेता है। खज़ानची को बुलाकर खानखाना ने उसे एक लाख रुपये दिलाये। वह आशीर्वाद देता हुआ चला गया। यह क्रम सात रोज चला। भिक्षुक ने सोचा—यह अमीर है। ईश्वर जाने कब बदल जाये और सारा धन छीन ले। वह आठवें रोज नहीं गया। खानखाना ने कहा—"हमने पहले ही दिन सत्ताईस लाख रुपये अलग कर लिये थे।"[1] पर वह संकीर्ण-हृदय था। न जाने उसने क्या सोचा?

16. एक दिन खानखाना की सवारी चली जा रही थी। एक दरिद्र व्यक्ति ने एक शीशी में एक बूँद पानी डालकर दिखाया और शीशी झुकाई। जब उसमें से पानी गिरने लगा तो शीशी को सीधा कर दिया। रंग-रूप से वह अच्छे कुल का प्रतीत होता था। खानखाना उसे अपने साथ ले आये और उसे बहुत पुरस्कार आदि देकर विदा किया। लोगों की जिज्ञासा दूर करते हुए खानखाना ने कहा—इसका अभिप्राय यह था कि एक बूँद प्रतिष्ठा ही किसी तरह बची हुई है और अब यह भी समाप्त होने जा रही है।

17. एक दिन सवारी के समय किसी ने खानखाना पर एक ढेला

---

1. आगरा से बुरहानपुर तक 27 पड़ाव पड़ते थे।

मारा। सैनिक दौड़ कर उसे पकड़ लाये। खानखानाँ ने उसे हज़ार रुपये दिलाये। कुछ व्यक्तियों के आपत्ति करने पर खानखानाँ ने कहा — "लोग फले हुए वृक्ष पर पत्थर मारते हैं। इसने मुझे पत्थर मारा —मेरे पास जो फल था, वह दे दिया।"

खानखानाँ की उदारता और दानशीलता के लोकाख्यान हिन्दुस्तान ही नहीं, अरब और ईरान तक फैल गये थे। हज करने के लिए, मक्का जाते हुए, दकेबी अस्फहानी जब अदन पहुँचा तो उसने बच्चों को गीत गाते हुए सुना कि *खानखानाँ आया जिसके प्रताप से क्वारी कन्याओं ने पति पाये, व्यापारियों ने माल बेचे, बादल बरसे और जल-थल भर गये।*

ख़ानखानाँ की प्रशंसा में लिखा गया काव्य

अबुलफ़ज़्ल ने अकबर दरबार के जितने कवियों का उल्लेख किया है, उनमें अधिकांश खानखानाँ के आश्रित थे। उरफी नज़ीरी, मुल्ला हयाती जीलानी, दकेबी, अनीसी, मीर मुगीस माहवी हमदानी, काशी हज़बरी, मुल्ला मुहम्मद रज़ा 'नवी' आदि ने अकबर, जहाँगीर और शाहज़ादे मुराद की प्रशंसा में काव्य लिखा है, लेकिन इन सबसे बढ़कर उन्होंने खानखानाँ की प्रशंसा में काव्य लिखा है। ये सभी खानखानाँ की उदारता, दानशीलता और काव्य-मर्मज्ञता के बड़े प्रशंसक थे और अनेक बार खानखानाँ से पुरस्कृत हुए थे।

अकबर का नवरत्न शेख फ़ैज़ी पद व प्रतिष्ठा में खानखानाँ के समकक्ष था। उसने अपने समकालीन किसी अमीर की प्रशंसा नहीं की है, लेकिन उसे भी *कहना पड़ा — "खानखानाँ की उदारता ने चित्त को* प्रफुल्लित कर दिया क्योंकि उसे शायरों पर बड़ा भरोसा था इसलिए वह प्रशंसा करने से पूर्व ही पुरस्कार दे देता था।"

फारसी कवियों की तरह अनेक हिन्दी कवियों ने खानखानाँ के शौर्य और औदार्य की प्रशंसा में काव्य लिखा था। *प्रमुख कवियों और* उनकी रचनाओं को यहाँ उद्धृत किया जा रहा है :—

जाड़ा

महडू शाखा के इस चारण का वास्तविक नाम आसकरण था। काफी मोटा था, इसलिए लोग इसे जाड़ा कहते थे। यह महाराणा प्रतापसिंह के छोटे भाई जगमल का वकील बन कर खानखानाँ से मिला था। उसने खानखानाँ की प्रशंसा में चार दोहे कहे—

खानखानाँ नवाब हो मोहि अचंभो एह।
मायो किम गिरि मेरु मन साढ तिहत्थी देह ॥ 1 ॥

खानखानाँ नवाब रै खाडै आग खिवंत।
जलवाला नर प्राजलै तृणवाला जीवत ॥ 2 ॥

खानखानाँ नवाब रा अडिया भुज ब्रह्माण्ड।
पूठै तो है चडिपुर धार तले नव खण्ड ॥ 3 ॥

खानखानाँ नवाब री आदमगीरी धन्न।
मह ठकुराई मेरु गिर मनी न राई मन्न ॥ 4 ॥

(1 मुझे यह आश्चर्य है कि खानखानाँ का मेरु पर्वत जैसा मन साढे तीन हाथ की देह में कैसे समाया है। 2. खानखानाँ की तलवार से आग बरसती है पर पानीदार वीर पुरुष तो जल मरते हैं और तृण मुख में लिए (शरण में आये) हुए नहीं जलते। 3. खानखानाँ की भुजा ब्रह्माण्ड से जा अड़ी है, जिसकी पीठ पर चडीपुर (अर्थात् दिल्ली) है और जिसकी तलवार की धार के नीचे नवों खंड हैं। 4 खानखानाँ का औदार्य धन्य है कि मेरु पर्वत से अपने प्रभुत्व को मन में राई सा भी नहीं मानते।)

खानखानाँ ने इस कवि की सुदर उक्तियों से प्रसन्न होकर प्रत्येक दोहे पर एक-एक लाख रुपये देना चाहा पर उस स्वामिभक्त चारण ने रुपये न लेकर उसके बदले अपने स्वामी जगमल को बादशाह से जागीर दिलाने की प्रार्थना की। खानखाना की प्रार्थना पर अकबर ने जहाजपुर का परगना जगमल को दे दिया। खानखानाँ ने जाडा की प्रशंसा में एक दोहा भी कहा था :—

धर जड्डी अंबर जडा, जड्डा महड़ू जोय।
जड्डा नाम अलाहदा, और न जड्डा कोय ॥

(धरा बड़ी है, आकाश बड़ा है, महड़ू शाखा का यह चारण बड़ा है और अल्लाह का नाम बड़ा है। इनके अलावा और कोई बड़ा नहीं है।)

केशवदास

सन् 1612 में केशवदास ने 'जहाँगीर जस चन्द्रिका' में खानखानाँ का यश इस प्रकार वर्णित किया है :—

बइरम खाँ पुत्र सो हुमायूं को साहि सिंधु,
सातों सिंधु पार कीनी कीति करबर की।
शील को सुमेर, सुद्ध साँच को समुद्र, रन,
रुद्रगति 'केसौदास' पाई हरिहर की।
पावक प्रताप जाहि जारि जारी प्रक···
······साहिबी समूल मूल गर की।
प्रेम परिपूरन पियूष सींचि कल्प बेलि,
पाल लीनी पातसाही साहिं अकबर की॥ 1 ॥

ताको पुत्र प्रसिद्ध महि, सब खानन को खान।
भयो खानखानां प्रगट, जहाँगीर तनु-त्रान॥ 2 ॥

साहिजू की साहिबी को रच्छक अनंत गति,
कीनो एक भगवत हनुवत बीर सो।
जाको जस 'केसौदास' भूतल के आस पास,
सोहत छबीलो छीरसागर के छीर सो॥
अमित उदार अति पावन बिचारि चारु,
जहां तहां आदरियो गंगाजी के नीर सो।
खलन के घालिबे को खलक के पालिबे को,
खानखानां एक रामचन्द्र जू के तीर सो॥ 3 ॥

जीते जिन गक्खरी, भिखारी कीने भक्खरी जे,
खानि खुरासानि बाँधि, खरियो पर के।
चोरि मारे गोरिया बराह बोरि बारिधि मे,
मृग से बिडारे गुजराती लीने डर के॥
दच्छिन के दच्छ दीह दती ज्यो बिडारे बीर,
'केसौदास' अनायास कीने घर घर के।
साहिबी के रखवार सोभिजे सभा में दोऊ,
खानखानां मानसिंह सिंह अकबर के॥ 4 ॥

गंग

ये अकबरी दरबार के कवियो में प्रमुख थे। अकबर और खानखानां दोनो के आश्रित थे। खानखानां के विशेष प्रिय कवि थे। अपने हितैषियों की गुणावली वाले छन्दों मे खानखानां सम्बन्धी छन्द

सर्वाधिक संख्या में उपलब्ध हुए हैं। गंग की प्रशंसा अन्तर्मन से निःसृत हुई है। निम्नलिखित छंद पर खानखानाँ ने उन्हें छत्तीस लाख रुपये दिए थे :—

चकित भँवर रहि गयो गमन नहिं करत कमलवन।
अहि फनि-मनि नहिं लेत तेज नहिं बहत पवन घन॥
हंस सरोवर तज्यो, चक्क चक्की न मिले अति।
बहु सुंदरि पद्मिनी, पुरुष न चहे न करें रति॥
खल भलित सेस कवि 'गंग' भनि अमित तेज रवि रथ खस्यो।
खानानखान बैरमसुवन जि दिन कोप करि तंग कस्यो॥

रहीम की दानशीलता की प्रशंसा में गंग ने निम्नलिखित दोहा लिख कर भेजा :—

सीखे कहाँ नवाबजू ऐसी देनी दैन।
ज्यों ज्यों कर ऊँचो करो, त्यों त्यों नीचे नैन॥

रहीम ने अत्यन्त विनम्रता और निरभिमानता दिखाकर उत्तर दिया :—

देनदार कोउ और है, भेजत सो दिन रैन।
लोग भरम हम पर धरें, याते नीचे नैन॥

खानखानाँ से सम्बन्धित उनके अन्य छन्द हैं :—

नवल नवाब खानखानाँ जू तिहारी त्रास,
भागे देस पति धुनि सुनत निसान की।
'गंग' कहै तिनहूँ की रानी रजधानी छाँड़ि,
फिरैं बिललानी सुधि भूली खान पान की॥
तेउ मिली करिन हरिन मृग बानरानी,
तिनहूँ की भली भई रच्छा तहाँ प्रान की।
सची जानी करिन, भवानी जानी केहरनि,
मृगन कलानिधि, कपिन जानी जानकी॥ 1॥

हहर हवेली सुनि सटक समरकंदी,
धीर न धरत धुनि सुनत निसाना की।
मछम को ठाठ ठठ्यो प्रलय सों पलटबो 'गंग',
खुरासान असहान भये एक आना की।
चोवन उबीठे बीठे मीठे-मीठे महबूबा,
हिए भर न हेरियत अबद बहाना की।

तोसखाने, फीलखाने, खजाने, हुरमखाने,
खाने खाने खबर नवाब खानखानाँ की ॥ 2 ॥

कश्यप के तरनि औ तरनि के करन जैसे,
उदधि के इन्दु जैसे, भए यों जिजाना के।
दशरथ के राम और स्याम के समर जैसे,
ईश के गनेश औ कमलपत्र आना के॥
सिंधु के ज्यों सुरतरु, पवन के ज्यो हनुमान,
चंद के ज्यो बुध, अनिरुद्ध सिंह बाना के।
तैसेई सपूत खान बैरम के खानखानाँ,
वैसई दराब खाँ सपूत खानखानाँ के ॥ 3 ॥

नवल नवाब खानखानाँ जू तिहारे डर,
परी है खलक खैल भैल जहूँ तहूँ जू।
राजन की रजधानी डोली फिरें बन-बन,
नैठन को दैठें बैठे भरे बेटी बहू जू।
चहूँ गिरि राहे परी समुद अथाहे अब,
कहे कवि 'गंग' चक्रवल्ली और चहूँ जू।
भूमि चली शेष धरि, शेष चल्यो कच्छ धरि,
कच्छ चल्यो कौल धरि, कौल चल्यो कहूँ जू ॥ 4 ॥

राजे भाजे राज छोडि, रन छोड़ि राजपूत,
राउति छोड़ि राउत रनाई छोडि राना जू।
कहे कवि 'गंग' इत समुद के चहूँ कूल,
कियो न करे कबूल तिय खसमाना जू॥
पच्छिम पुरतगाल काश्मीर अबताल,
खक्खर को देस बाढ्यो भक्खर भगाना जू।
रूम-शाम लोम मोम, बलख बदाऊँ खान,
खैल फैल खुरासान खीझे खानखानाँ जू ॥ 5 ॥

गंग गोछ मौछे जमुन, अधरन सरसुती राग।
प्रकट खानखानाँ भयो, कामद बदन प्रयाग ॥ 6 ॥

धमक निसान सुनि, धमकि तुरान चित्त,
　　चमक किरान मुल्तान थहराना जू।
मारु मरदान काम रुके करवान आदि,
　　मेवार के रानहि दवान खानमाना जू॥
पुर्तगाल पछ माघ पलटान उत्तराघ,
　　गुजरात देश अरु दच्छिन दबाना जू।
अरवान हबसान हट्टेलान रूम सान,
　　खेल मेल खुरासान चढ़े खानखानाँ जू॥ 7॥

बैरम को खानखानाँ बिरच्यो बिराने देस,
　　दक्षिण फौजें मारी खग्ग मुख ओ परी।
माते माते हाथिन के हलका हलाय डारे,
　　मानो महा मारुत शरीर डारी होपरी॥
लोहू के बलै लै गय गिरजा गले लै देत,
　　चोथ चोथ खात गीध चर्बै मुख चोपरी।
तियन समेत प्रेत हाँके देत बीर खेत,
　　खलल खखल हँसे खलन की खोपरी॥ 8॥

बाँधिबे कौं अंजलि, बिलोकिबे कौं काल ढिंग,
　　राखिबे कौं पाम जिय, मारिबे कौं रोष है।
जारिबे कौं तन मन, भरिबे कौं हियो आँखें,
　　धरिबे कौं पग मग गनिबे कौं कोम है॥
खाइबे कौं सौंहें, भौंहें चढ़िबे-उतारिबे कौं,
　　सुनिबे कौं प्रानघात किए अपसोस है।
बैरम के खानखानाँ तेरे डर बैरी-बधू,
　　सींवे कौं उमास मुख दीबे ही कौं दोस है॥ 9॥

नवल नवाब खानखानाँ जी रिसाने रन,
　　कीने अरि जेर समसेर सर सरजे।
माँस के पहाड़ सम मानु करि राखे सत्रु,
　　कीने धममान भूमि आसमान लरजे॥
सोणित की धारा सो छुअत चन्द्रमा-सी धार,
　　भारी भयो मेद रुद्रन को हा हा करजे।

न्यारो बोल बोलत कपाल, मुंडमाल न्यारी,
न्यारो गजराज, न्यारो मृगराज गरजे ॥10॥

प्रबल प्रचंड बनी बैरम के खानखाना,
तेरी धाक दीपक दिसान दह दहकी।
कहै कवि गंग तहां भारी सूर-बीरनि के,
उमड़ि अखंड दल प्रलै पौन लहकी॥
मच्यो घमसान, तहाँ तोप तीर बान चले,
मंडि बलवान किरवान कोप गहकी।
तुंड काटि, मुंड काटि, जोसन जिरह काटि,
नीमा जामा जीन काटि जिमी आनि ठहकी ॥11॥

ठठा मार्‌यो खानखानां दच्छन अजीम कोका,
इराकखां मारि मारे कसमीर ठौर के।
साहि के हरामखोर मारे साह कुली खान,
कहाँ लौं गनाऊँ गुन उमरावन और के॥
रुस्तम नवाब मारि बानाबाट बार कियो,
फाजिल फिरंगी मारे टापनि सरोर के।
बास्ती को काम छह हजार असवार जोरे,
जैन खाँ जुनारदार मारे इकतौर के ॥12॥

..........पैज तड़ैन अदच्छन।
नगनि जात भामिनि पनाय नायक उरि दृगन।
इक्क वरनि सरवरनि तीर तरवारिन पत्त पर।
हार्द हार्द हा, हूँथि हुलिल गाहे तिलग नर।
खानानखान बैरम सुवन, जदिन कुप्पि कर खग्ग लिय।
कलमलि सकल दविसन मुलक, पट्टन पट्टन पट्ट किय ॥13॥

कुंकुम कुंभि सकुलहि, गहरि हिय गिरि हिय फस्यव।
दर-दरेर कुब्बेर, बेर जिमि मेरु पलस्यव॥
सरस कमल संपुटय सूर आथवंति पढठयव।
गिरि गगम्मि तिय गम्म, कठ कामिनिय उचित्यव॥
भनि 'गंग' अदिव्वय दव्वदिय, दव्विय कर दव्विय गयो।
खानानखान बैरम सुवन, जा दिन दखल दक्खिन दयो ॥14॥

संत

सेर सम सील सम धीरज सुमेर सम,
सेर सम साहेब जमाल सरसाना था।
करन कुबेर कलि कीरति कमाल करि,
ताले बन्द मरद दरदमद दाना था॥
दरबार दरस-परस दरवेसन को,
तालिब-तलब कुल आलम बखाना था।
गाहक गुनी के, सुख चाहक दुनी के बीच,
'संत' कवि दान को खजाना खानखानाँ था॥

हरिनाथ

ये महापात्र नरहरि के पुत्र, उदार और सुकवि थे। एक दोहे पर मानसिंह से प्राप्त एक लाख रुपये को अन्य कवि के दोहे को सुनकर पुरस्कार में दे दिया था। खानखानाँ से सम्बन्धित इनका छन्द है :—

बैरम के तनय खानखानाँ जू के अनुदिन,
दोउ प्रभु सहज सुभाए ध्यान ध्याये हैं।
कहै 'हरिनाथ' सातो दीप की दिपनि करि,
जोह सह करताल तान सो बजाए हैं॥
एतनी भयति दिल्लीपति की अधिक देखी,
पूजत नए को माल सातें भेद पाए हैं।
और सिर माजे जहाँगीर के पगन तट,
टूटे फूटे फाटे सिर सीस पै चढ़ाए हैं॥

मंडन

ये बुंदेलखंड के कवि थे। इनका एक ही छन्द मिलता है :—

तेरे गुन खानखानाँ परत दुनी के कान,
तेरे कान वे गुन आपनो धरत हैं।
तू तो खग खोलि-खोलि खलन पै कर लेत,
यह तो पै कर नेक न डरत हैं॥
'मंडन सुकवि' तू चढ़त नवखंडन पै,
ये भुज दंड तेरे चढ़िए रहत हैं[1]।
ओढ़नी अटल खान साहब तुरक मान,
तेरी या बखान छोसो तेहूँमो करत हैं[2]॥

1. चढ़ी न परत हैं।
2. तेरो एक मान दोनों लोक मो करत है।

प्रसिद्ध

शिवसिंह सरोज के अनुसार यह खानखाना के आश्रित कवि थे। इन्होंने अपने आश्रयदाता की प्रशंसा निम्नलिखित छंदों में की है :—

गाजी खानखानाँ तेरे धौंसा की धुकार सुनि,
सुत तजि, पति तजि, भाजी बैरी बाल हैं।
कटि लचकत, भार भार न सँभारि जात,
परी विकराल जहँ सघन तमाल हैं।।
कवि 'प्रसिद्ध' तहाँ लगन लिजायो आनि,
जल भरि-भरि लेती दृगन बिसाल हैं।
बेनी खेंचे मोर, मीन फूल को चकोर खेंचे,
मुकता की माल ऐंचि खेंचत मराल हैं।।1।।

सात दीप सात सिंधु थरक-थरक करें,
जाके उर टूटत अखूट गढ़ राना के।
कंपत कुबेर बेर मेर मरजाद छाँड़ि,
एक-एक रोम झर पड़े हनुमाना के।।
धरनि धसक धरा, मुलक भमक गई,
भनत 'प्रसिद्ध' खम्भ डोले सुरगाना के।
सेस फन फूट-फूट चूर चकचूर भए,
चले पेसखाना जू नवाब खानखानाँ के।।2।।

अलख चरन संचरहि सबर सोहे सरमथ गति।
रुचिर रंग उत्तंग अंग मंडहि विचित्र अति।।
बैराम-सुवन नित बकसि-बकसि हय देत मंगनन।
करत राग 'परसिद्ध' रोस छंड़हि न एक छिन।।
थरहरहि पलट्टहि उच्छलहि, नच्चत धावत तुरंग इमि।
खंजन जिमि नागरि नैन जिमि, नट जिमि मृग जिमि पवन जिमि ।।3।।

अलाकुली

इस मुसलमान कवि का खानखानाँ की प्रशंसा में एक ही छंद मिला है—

लंका लायो लूट किधौं सिहन को कूट-कूट,
हाथी, घोड़े, ऊँट एते पाए तो खजाने हैं।
'अलाकुली' कवि की कुबेर ते मिताई कीनी,
अनुतुले अनमाए नग औ नगीने हैं।।

पाई हैं तैं खान लक्ष भई पहिचान मूल,
रह्यो है जहाँ नए समान कहाँ कीने हैं।
पारस ते पाए किधौं पारा ते कमायो किधौं,
समुद हूँ तो लायो किधौं खानखानाँ दीन्हे हैं।।

तारा

सम्भवतया यह खानखानाँ का आश्रित कवि था। इसका एक ही छन्द मिला है —

जोरावर अब जोर रवि-रथ कैसे जोर,
बने जोर देखे दीठि जोर रहियतु है।
हैन को लिवैया ऐसो, है न को दिवैया ऐसो,
दान खानखानाँ को लहे ते सहियतु है।।
तन मन हारे बाजी हैं तन सँभारे जात,
और अधिकाई कहो कासौं चहियतु है।
पौन की बड़ाई बरनत सब 'तारा' कवि,
पूरो न परत याते पौन रहियतु है।।

मुकुंद

खानखानाँ के समकालीन मुकुंद कवि का उनकी प्रशंसा में एक छन्द मिला है :—

कमठ पीठ पर कोल कोल पर फन फनिंद फन।
फनपनि फन पर पुहुमि पुहुमि पर दिगत दीप गन।।
सप्त दीप पर दीप एक जबू जग निश्चिय।
कवि मुकुंद तहँ भरतखंड उप्परहिं बिसिक्खिय।।
खानानखान बैरम-तनय तिहि पर तव भुज कल्पतरु।
जगमगहि खग्ग भुज अग्ग पर, खग्ग-अग्ग स्वामित्तिवरु।।

अज्ञात कवियों के छंद

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य कवियों के छन्द मिले हैं जिनमें छाप न होने से यह कहना कठिन है कि इनके रचनाकार कौन रहे होंगे :—

दक्खिन को सूम खानखानाँ जू तिहारो सुनि,
होत है अचंभो राजा राय उमराइ के।
एक दिन एक रात और दिन आपए सौं,
आए जो मुवाबिले को गए ना विराइ के।।

बामर के जूमे ते सुमार ह्वै-ह्वै गिरत हैं,
भेदें रविमंडल ते मारे हैं नराइ के।
जामनी के जूमे सूर सूरज को पैंड़ों देखे,
भोर राहगीर दरवाजे ज्यों सराइ के॥1॥

नगर ठठा की रजधानी धूरधानी कीनी,
धरक्यो अँधारो खान पानी न हलक मे।
छाँड़े हैं तुखार औ बुखार न उपार भरे,
उजबक उजर कै गयो है पलक मे।
पौरि-पौरि परे सेर ठौर-ठौर पौरि दई,
खानखानो ध्याये ते अवाज है खलक मे।
पिय भाजे तिय छाँड़ि, तिया करे पीउ-पीउ,
बाबा-बाबा बिललात बालक बालक में॥2॥

मदन-रूप-धन सबल बीर बाहन बल गज्जहु।
बहु सनाह पाखरी द्वार दुंदुभि बहु बज्जहु॥
बहु साहस उत्पन्न फेर पप्पन समर्थ कर।
सहनसाह सिर छत्र ताहि रक्खन समर्थ नर॥
खानानखान बैरम-सुवन, चित्त सहूर रस रत्तयो।
धन-मद-जोबन-राज मद, एकहि मद्द न मत्तयो॥3॥

खानखानाँ न जानियों, जहाँ खलित न जाय।
कूप नीर अट्टे बिना, नीली धरा न पाय॥4॥

खानखान नवाब तैं, वाही खग उल्लाल।
मुरफर पड़े न ऊठियो, जैसे अंबा डाल॥5॥

खानखानाँ नवाब हो, तुम धुर खेचनहार।
सेरा सेती नहिं खिचे, इस दरगाह का भार॥6॥

खानखानाँ नवाब तैं, हत्त लगाए एम।
मुरफर पड़े न ऊठियो, गए जोबसी जेम॥7॥

काहू रे करजदार झगरत बार-बार,
नैक दिल धीर धर जान इतबारो से।
देहूँ दर हाल माल, लिखले सवाई साल,
देखना बिहाल मत जानना भिखारी से॥
सेवा खानखानां की उमेदवारी दान कीते,
महर महान की सूँ होत धन धारी से।
अब घरी पल माँझ, पहर-द्वै-पहर माँझ,
आज-काल आज-काल हुरं हैं हजारी से॥8॥

दिए के हुकुम आगे दिये रहे जामिनी कै,
देह के कहन राख्यो देह के चहत हैं।
बखत के नाम-नाम राखत जहान माँहि,
घन के सबद घन-घन जे कहत हैं॥
खानखानाजू की अब ऐसी बक्सीस भई,
बाकी बकसीम अब बखसीस हत हैं।
हाथिन के नाम हाथी रहत तबेलन मे,
घोरा दिये घोरा सतरंज मे रहत हैं॥9॥

काहू की सिकारि स्याल लोमन को खेल होत,
काहू की सिकारि मृग मारि सुख मानो है।
काहू की सिकार साथ सिकरा-सिचान बान,
काहू की सिकार देखो वारण बखानो है॥
खानखान की सिकार सिंध पंछी वार पार,
छद-बद-फद खट बरन को ठानो है।
अब ही सुनोगे मास दोय-तीन-चार माँझ,
कौन हो दिसा को पातसाह बाँधि आनो है॥10॥

कृतित्व

अब्दुर्रहीम खानखानाँ की रचनाएँ हिन्दी साहित्य में 'रहीम के नाम से प्रसिद्ध हैं। 'मआसिरे-रहीमी' और 'मआसिरुल-उमरा' से यह स्पष्ट होता है कि कविता में वे 'रहीम' का तखल्लुस रखते थे। उनकी प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं :- -

1. दोहावली

कहा जाता है कि रहीम ने 'सतसई' की रचना की थी।[1] किन्तु अभी तक उनकी सतसई की प्रामाणिक प्रति नहीं मिली है। अब तक सम्पादकों ने मुक्तक-संग्रहों और हस्तलिखित ग्रंथों से उनके दोहे चुन कर सम्पादित किए हैं[2], किन्तु उनकी संख्या 300 से अधिक नहीं है। इस संदर्भ में यह भी मत व्यक्त किया गया है कि प्राप्त दोहों में शृंगार के दोहे बहुत कम हैं। संभव है कि रहीम रचित सतसई में से किसी ने शृंगार के दोहे निकालकर नीति आदि के दोहों का एक संग्रह कर दिया हो।[3] किन्तु इस कथन का कोई आधार प्रस्तुत नहीं किया गया है, न ही रहीम के शृंगारपरक दोहे पृथक् से मिलते हैं।

यद्यपि खानखानाँ ने अपने दोहों पर 'रहीम' या 'रहिमन' की छाप रखी है किन्तु कुछ विद्वानों का अनुमान है कि इनमें कुछ ऐसे दोहे भी हैं जिनमें भूल से या जान-बूझकर 'रहीम' की छाप रखी गई है;

---

1. नकछेदीलाल तिवारी, बरवै नायिका भेद (भूमिका), पृ० 2
2. 'रहीम कवितावली' (सुरेन्द्रनाथ तिवारी) में 254 दोहे, 'रहिमन-नीति दोहावली' (लक्ष्मीनिधि चतुर्वेदी) में 203 दोहे, 'रहीम' (रामनरेश त्रिपाठी) में 233 दोहे, 'रहिमन विनोद' (अयोध्या प्रसाद) में 268, 'रहीम रत्नावली' (मायाशंकर याज्ञिक) में 270, 'रहिमन विलास' (ब्रजरत्न-दास, रामनारायण लाल, इलाहाबाद वाला संस्करण) में 279 दोहे दिए गए हैं। प्रस्तुत ग्रंथावली में उनके 300 दोहे हैं।
3. मायाशंकर याज्ञिक, 'रहीम रत्नावली' (भूमिका)।

परन्तु वे दूसरे कवियों के हैं ।[1] वस्तुतः दोहावली की प्रामाणिक प्रतियां न मिलने से इस अनुमान की सच्चाई परखी नहीं जा सकती। इतना अवश्य है कि रहीम ने सतसई की रचना की होती तो उसकी प्रति या प्रतियाँ कहीं न कहीं सुरक्षित मिलती। रहीम का जीवन जिन राजनीतिक, युद्धपरक और प्रशासनिक उत्थानों-पतनों से गुजरा था, उनमें सतसई जैसा ग्रंथ लिखा होगा, यह संभव नहीं लगता।

2 नगर शोभा

इस शृंगारिक ग्रंथ को रहीम ने स्वतन्त्र रूप से लिखा है। ग्रंथ के प्रत्येक दोहे में रहीम का नाम न होते हुए भी काव्य-भाषा की प्रौढ़ता और शृंगारिक भावों की अभिव्यक्ति इसे रहीम की रचना सिद्ध करती करती हैं। 'शृंगार-सोरठा' की भाषा से इसकी भाषा साम्य रखती है। रचना के प्रारंभ में—'अथ नगर शोभा नवाब खानखानां कृत' लिखा है। इसकी प्राचीन हस्तलिखित प्रति भी मिलती है। इसमें 142 दोहे हैं। रचना का प्रारंभ मंगलाचरण से हुआ है, जिससे सिद्ध होता है कि इस रचना का 'दोहावली' से सम्बन्ध नहीं है।

संभवतया कवि को अकबर के 'मीना बाजार' में एकत्र सभी वर्ण व व्यवसाय की स्त्रियों को देखकर रचना करने की प्रेरणा मिली है। कैथनि, जौहरनि, बरइन, रँगरेजिन, बनजारिन, तुरकिन आदि के सौंदर्य-बोध के सजीव बिम्ब उपस्थित करना, रहीम की प्रमुख विशेषता रही है। रहीम का यह काव्य सामन्ती समाज का परिचायक है। इसके दोहे के भावों के आधार पर कुछ बरवै लिखे गये हैं किन्तु यह कहना कठिन है कि वे रहीम कृत हैं अथवा अन्य कवि की रचना।

3 बरवै नायिका भेद

इस ग्रंथ की कई हस्तलिखित प्रतियां (कृष्णबिहारी मिश्र तथा काशिराज की प्रतियां) मिली हैं। पं० नकछेदीलाल तिवारी ने इसका सम्पादन भी किया है।[2] प्रतियों में नायक-नायिका के लक्षण, दोहों में, मतिराम के 'रसराज' से हैं और उदाहरण रहीम के बरवों में हैं।[3]

1. यह मत ब्रजरत्नदास, मयाशंकरप्रसाद तथा मायाशंकर याज्ञिक आदि व्यक्तियों ने दिया है।
2. बरवै नायिका भेद, भारत जीवन प्रेस, काशी।
3. काशिराज पुस्तकालय की प्रति के अन्तिम दोहे से यह स्पष्ट है :—

लक्षण दोहा जानिए उदाहरन बरवान।
दूनों के संग्रह भए रस सिंगार निर्मान॥

कहा जाता है रहीम के अनुचर को विवाह के कारण लौटने मे कुछ देरी हो गयी थी। उसे रहीम के रुष्ट होने का भय था, तब उसकी स्त्री ने एक बरवै लिखकर भेजा था—

प्रेम प्रीति के बिरवा चलेहु लगाय।
सोचन की सुधि लीजो मुरझि न जाय॥

रहीम ने उसे पुरस्कृत कर और छुट्टियाँ बढ़ा दी थी। तब से बरवै रहीम का प्रिय छन्द हो गया। बेणीमाधवदास रचित 'गुसाईं-चरित' के आधार पर यह भी कहा जाता है कि रहीम ने गोस्वामी जी से कहकर 'बरवै रामायण' की रचना कराई थी। इस सदर्भ में यह दोहा उद्धृत किया जाता है —

कवि रहीम बरवै रचे, पठये मुनिवर पास।
लखि तेइ सुदर छद मे, रचना कियेउ प्रकाम।

तुलसीदास के पास बरवै भेजने की घटना सन् 1613 की बताई जाती है किन्तु जिस मूल 'गुसाईं-चरित' को तुलसीदास के शिष्य बेणीमाधवदास की रचना माना जाता है उसकी अप्रामाणिकता डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने इन शब्दो में सिद्ध की है—"इतिहास लेखकों का कथन है कि सन् 1612 मे रहीम दक्षिण भेज दिए गए थे, वहाँ से 1616 मे बुला लिए गए। यह बात असगत सी जँचती है कि सुदूर दक्षिण से रहीम ने कतिपय बरवै की रचना कर उन्हें कवि के पास भेजा था।"[1]

लोक प्रवाद को अविश्वसनीय मान लिया जावे तब भी इतना निश्चित है कि रहीम के बरवो से तुलसीदास को 'बरवै रामायण' लिखने की प्रेरणा मिली थी, चाहे वह स्वत: मिली हो।

रीति-ग्रंथों की शैली मे लिखा 'बरवै नायिका भेद' अवधी भाषा मे है। इसके छद सुगठित, लालित्य एव कवित्वपूर्ण हैं। यह हिन्दी के नायिका-भेद सम्बन्धी ग्रंथों मे सबसे प्राचीन है। इसके 119 छद प्राप्त हुए हैं।

4. बरवै

रहीम ने अनेक छदो में काव्य रचना की है किन्तु 'बरवै नायिका भेद' के प्रारभ मे आया छंद यह सिद्ध करता है कि बरवै रहीम का प्रिय छंद रहा है :—

1. तुलसीदास, पृ० 50।

कवित कह्यो दोहा कह्यौ, तुलै न छप्पय छंद।
बिरच्यो यहै विचार कै, यह बरवै रस कंद।।

कवि ने 'नायिका-भेद' के बरवों के अतिरिक्त स्वतन्त्र बरवै भी लिखे हैं। यह रचना प्रामाणिक है। इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ मेवात (अलवर) तथा इलाहाबाद से प्राप्त हुई हैं। प्रारम्भ में मंगलाचरण के छह छंद हैं। अब तक इसके 105 छंद प्राप्त हुए हैं। बरवै का कोई क्रम नहीं है। अधिकांश शृंगार रस के तथा कुछ शान्त रस के हैं। अंत में ग्रंथ के समापन सम्बन्धी सूचना या रचना-काल नहीं है। प्रारंभिक छंदों का भाव 'रामचरितमानस' के मंगलाचरण सम्बन्धी छंदों से मिलता-जुलता है। संभव है उन छन्दों का भाव ही बरवों में लिखकर गोस्वामी जी के पास भेजा हो।

इस ग्रंथ की भाषा तथा भाव-बोध नायिका-भेद से अधिक प्रौढ़ है, जिससे ज्ञात होता है कि यह नायिका-भेद से परवर्ती रचना है। यह स्वतन्त्र रचना है जिसका प्रारंभ 'श्री रामोजयति अथ खानखानां कृत बरवै प्रारम्भ' से हुआ है। बारहमासा पद्धति पर लिखे गये आषाढ़, सावन, भादों तथा फाल्गुन सम्बन्धी 4 छंद हैं। संभवतया कवि बारहमासा पूरा नहीं कर पाया।

5. शृंगार सोरठ

कहा जाता है (शिवसिंह सेंगर और ब्रजरत्नदास) रहीम का इस नाम से एक स्वतन्त्र ग्रंथ था। किन्तु वह अप्राप्य है। केवल इसके सात छंद मिले हैं जो ग्रंथावली में 'शृंगार सोरठ' के अन्तर्गत दिए गए हैं। भाव-बोध और भाषिक संरचना की दृष्टि से ये काफी प्रभावी हैं। विप्रलंभ शृंगार का सुंदर नियोजन हुआ है।

6 मदनाष्टक

'मदनाष्टक' के चार पाठ मिलते हैं—1. 'सम्मेलन पत्रिका' में प्रकाशित 2. असनी से प्राप्त, 3. मुअज्जमाबाद से प्राप्त और 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में प्रकाशित, 4. 'माधुरी' में प्रकाशित। सम्पादकों ने इसकी प्रामाणिकता का दावा किया है। 'रहीम कवितावली' में नागरी प्रचारिणी वाला 'मदनाष्टक' रहीम कृत माना गया है, मायाशंकर याज्ञिक ने 'रहीम रत्नावली' में 'सम्मेलन पत्रिका' वाले पाठ को शुद्ध माना है। 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के लेख में मुअज्जमाबाद वाले अष्टक को रहीम की रचना माना गया है। 'ग्रंथावली' में सम्मेलन वाले पाठ को

आधार बनाते हुए *असनी और 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' वाले* अष्टकों को पाद-टिप्पणी में दे दिया गया है।

संस्कृत के अष्टकों की लम्बी परम्परा रही है। रहीम ने संस्कृत शैली को अपनाते हुए अपना 'मदनाष्टक' संस्कृत मिश्रित खड़ी बोली और मालिनी छंद में लिखा है। रहीम का काव्य प्रयोगधर्मी है। जिस प्रकार परम्परागत छन्दों के साथ नये छन्दों में काव्य रचना की ओर वे प्रवृत्त हुए; उसी प्रकार भाषा-वैविध्य को अपनाते हुए उन्होंने फारसी, खड़ी बोली, संस्कृत, अवधी और ब्रज के अतिरिक्त राजस्थानी और पंजाबी आदि का भी उन्होंने प्रयोग किया है। मिश्र भाषा में काव्य-रचना का प्रयास अमीर खुसरो तथा शार्ङ्गधर कर चुके थे। कुछ लोगों ने 'मदनाष्टक' की भाषा को रेख़ता माना है, जिसका प्रयोग उस समय दक्षिण में होने लगा था।

'मदन' शब्द से यह आभास हो जाता है कि यह रचना शृंगारिक है। इसमें कृष्ण की वंशी के व्यापक प्रभाव, गोपियों की विह्वलता, कृष्ण-गोपी की उत्कट प्रेम-भावना की अभिव्यक्ति हुई है। समग्र वर्णन विप्रलंभ शृंगार के अन्तर्गत स्मृति-संचारी के रूप में हुआ है। लेकिन इसमें भावों की प्राजलता, माधुर्य और भाषा की प्रौढ़ता नहीं है। खड़ी बोली के प्रयोग की दृष्टि से यह रचना महत्वपूर्ण है। एक-दो स्थलों पर कुछ शब्दों के प्रयोग संस्कृत-विभक्ति सहित हुए हैं।

7. फुटकर पद

इसमें रहीम के चार कवित्तों, पाँच सवैयों, दो दोहों तथा दो पदों का संग्रह किया गया है। पदों में कृष्ण का सौंदर्य-बोध है। शब्द-योजना मधुर, ललित व संगीतात्मक है। सवैयों की भाषा परिमार्जित ब्रज है और कवित्तों की खड़ी बोली मिश्रित ब्रज है। यह पृथक् से कोई ग्रंथ नहीं है।

8. संस्कृत श्लोक

यह रहीम के संस्कृत श्लोकों का संग्रह है। कुछ श्लोक मिश्रित भाषाओं में हैं। इनमें निर्वेदमूलक भावनाएँ व्यक्त हुई हैं। दो श्लोकों के भाव इन्होंने क्रमशः एक छप्पय और एक दोहे में व्यक्त किए हैं, उन्हें ग्रंथावली में दे दिया गया है।

9 खेट कौतुक जातकम्

ज्योतिष विषयक इस ग्रंथ के कुछ छन्द संस्कृत श्लोकों के रूप में, कुछ फारसी मिश्रित संस्कृत श्लोकों के रूप में मिलते हैं। ग्रंथ का प्रारंभिक छंद है—'करोम्यब्दुल रहीमोऽहं खुदाताला प्रसादतः । पारसीयपदैर्युक्तं खेटकौतुकजातकम्' ।

मंगलाचरण के बाद आया श्लोक है :—

फारसी पद मिश्रित यथा: खलु पंडितैः कृता पूर्वं ।
सम्प्राप्य तत्पदपयं करवाणि खेटकौतुक पद्यम् ॥

मंगलाचरण के पश्चात् सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि नक्षत्रों के भावफल के बारह-बारह श्लोक दिए हैं। तत्पश्चात् राहु का भावफल बारह श्लोकों में तथा केतु का एक छंद में दिया गया है। इसमें वर्णित योग और उनके फल ज्योतिष-ग्रंथों से प्रमाणित होते हैं। इसका प्रकाशन ज्ञानसागर प्रेस, बम्बई से हो चुका है। साहित्यिक रचना न होने से इसे ग्रंथावली में स्थान नहीं दिया गया है।

10 फारसी की रचनाएँ

1. वाकेआत बाबरी : बाबर के तुर्की भाषा में लिखित आत्मचरित 'बाबरनामा' का रहीम ने 'वाकेआत बाबरी' के नाम से फ़ारसी में अनुवाद किया था। ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होने के अतिरिक्त यह एक भावुक तथा उदारमना वीर की हार्दिक भावनाओं का प्रतिबिम्ब भी है। रहीम का यह अनुवाद काफी शुद्ध है। पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानों ने इस अनुवाद की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है।

2. फ़ारसी दीवान : रहीम फारसी के सुकवि थे। उन्होंने एक दीवान लिखा है। उदाहरण के लिए एक गजल का कुछ अंश यहाँ उद्धृत किया जा रहा है :—

अदाए हक्क़ मुहब्बत इनायतस्त जे दोस्त ।
वगरना. खातिरे आशिक़ बहेच खुर्संदस्त ॥
न जुल्फ दानमो नै दाम ईकदर दानम ।
के पाता बेह सरम व हर्चो हस्त दर बदस्त ।

इन दोनों को ग्रंथावली में नहीं लिया गया है।

इनके अतिरिक्त रहीम द्वारा शतरंज के खेल की एक पुस्तक तथा 'रासपंचाध्यायी' लिखे जाने का उल्लेख मिलता है। ये दोनों अनुपलब्ध हैं। 'भक्तमाल' में प्राप्त कवि के कुछ पदों के आधार पर 'रासपंचाध्यायी' लिखे जाने की कल्पना कर ली गई है।

रहीम का संवेदनशील एवं सचेतनशील व्यक्तित्व था। कूटनीति और युद्धोन्माद के विषम परिवेश ने उनकी संवेदनशीलता को नष्ट नहीं किया था। इससे उनके अनुभव समृद्ध हुए हैं तथा मानव प्रकृति को समझने का अच्छा अवसर मिला है। वे स्वयं रचनाधर्मिता की ओर उन्मुख हुए ही, साथ ही अकबर के दरबार को कवियों और शायरों का केन्द्र बना दिया था। अकबर की धार्मिक सहिष्णुता और उदारवादी नीति ने उन दरारों को पाटने का कार्य किया जो दो सम्प्रदायों के बीच चौड़ी व गहरी होती जा रही थी। रहीम जन्म से तुर्क होते हुए भी पूरी तरह भारतीय थे। भक्त कवियों जैसी उत्कट भक्ति-चेतना, भारतीयता और भारतीय परिवेश से गहरा लगाव उनके तुर्क होने के अहसास को झुठलाता सा प्रतीत होता है।

दोहावली

तैं[1] रहीम मन आपुनो, कीन्हों चारु चकोर।
निसि बासर लागो रहै, कृष्णचंद्र की ओर॥ 1॥

अच्युत-चरण[2]-तरंगिणी,[3] शिव-सिर-मालति-माल।
हरि न बनायो सुरसरी, कीजो इदव-भाल॥ 2॥

अधम वचन काको[4] फल्यो, बैठि ताड़ की छांह।
रहिमन काम न आय है, ये नीरस जग मांह॥ 3॥

अन्तर दाव लगी रहै, धुआं न प्रगटै सोइ।
कै जिय आपन जानही, कै जिहि बीती होइ॥ 4॥

अनकीन्ही बातें करै, सोवत जागै जोय।
ताहि सिखाय जगायबो[5] रहिमन उचित न होय॥ 5॥

अनुचित उचित रहीम लघु, करहिं बड़ेन के जोर।
ज्यो ससि के संजोग तें, पचवत आगि चकोर॥ 6॥

अनुचित बचन न मानिए जदपि[6] गुराइसु[7] गाढ़ि।
है रहीम रघुनाथ तें,[8] सुजस भरत को[9] बाढ़ि॥ 7॥

अब रहीम चुप करि रहउ,[10] समुझि[11] दिनन कर[12] फेर।
जब दिन नीके[13] आइ हैं बनत न लगि है देर॥ 8॥

अब रहीम मुश्किल पड़ी, गाढ़े दोऊ काम।
सांचे से तो जग नहीं, झूठे मिलैं न राम॥ 9॥

पाठान्तर—1. जिहि। 2. चरन। 3. तरंगिनी। 4. ते को।
5. जानि अनेती जो करै जागत ही रह सोय।
ताहि जगाय बुझायबो॥
6. यदपि। 7. गुराइस। 8. से। 9. कर। 10. रहिमन चुप ह्वै बैठिये।
11. देखि। 12. को। 13 नीके दिन।

अमरबेलि बिनु मूल की, प्रतिपालत है ताहि।
रहिमन ऐसे प्रभुहि तजि, खोजत फिरिए काहि ॥10॥

अमृत ऐसे वचन में, रहिमन रिस की[1] गाँस।
जैसे मिसिरिहु में मिली, निरस बाँस की[2] फाँस ॥11॥

अरज गरज मानें नहीं, रहिमन ए[3] जन चारि।
रिनिया, राजा, माँगता, काम आतुरी नारि ॥12॥

असमय परे रहीम कहि,[4] माँगि जात तजि लाज।
ज्यों लछमन माँगन गये, पारासर के नाज ॥13॥

आदर घटे नरेस ढिग, बसे रहे कछु नाहिं।
जो रहीम कोटिन मिले,[5] धिग जीवन जग माहिं ॥14॥

आप न काहू काम के, डार पात फल फूल[6]।
औरन को रोकत फिरें, रहिमन पेड़[7] बबूल ॥15॥

आवत काज रहीम कहि, गाढ़े बंधु सनेह।
जीरन होत न[8] पेड़ ज्यौं, थामे[9] बरै[10] बरेह ॥16॥

उरग, तुरंग, नारी, नृपति, नीच जाति, हथियार।
रहिमन इन्हें सभारिए, पलटत लगै न बार ॥17॥

ऊगत जाही किरन सों अथवत ताही कांति।
त्यों रहीम सुख दुख सबै,[11] बढ़त एक ही भाँति ॥18॥

एक उदर दो चोंच है, पंछी एक कुरंड।
कहि रहीम कैसे जिए, जुदे जुदे दो पिंड ॥19॥

एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय[12]।
रहिमन मूलहि सींचिबो,[13] फूलै फलै[14] अघाय[15] ॥20॥

पाठान्तर—1. कै। 2. कै। 3. ये। 4. कह। 5. मिलें। 6. छाया दल फल मूल। 7. कूर। 8. होनहि। 9. थामे। 10. बरहिं। 11. सहै। 12. जाइ 13. जो तू सींचे मूल को। 14. फूलहि फलहि। 15. अघाइ।

ए[1] रहीम दर दर[2] फिरहिं, माँगि मधुकरी खाहिं।
यारो[3] यारी छोड़िये[4] वे रहीम अब नाहिं[5] ॥ 21 ॥

ओछो[6] काम बड़े करैं[7] तौ न बड़ाई होय।
ज्यों रहीम हनुमंत को,[8] गिरधर[9] कहै न कोय ॥ 22 ॥

अंजन दियो तो किरकिरी, सुरमा दियो न जाय[10]।
जिन आँखिन सों हरि लख्यो, रहिमन बलि बलि जाय[11] ॥13॥

अंड न बौड़ रहीम कहि, देखि सचिक्कन पान।
हस्ती-ढक्का, कुल्हड़िन, सहैं ते तरुवर आन ॥ 24 ॥

कदली, सीप, भुजंग-मुख, स्वाति एक गुन तीन।
जैसी संगति बैठिए, तैसोई फल दीन ॥ 25 ॥

कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय[12]।
पुरुष पुरातन की बधू, क्यों न चंचला होय[13] ॥ 26 ॥

कमला थिर न रहीम कहि, लखत अधम जे कोय[14]।
प्रभु की सो[15] अपनी[16] कहै, क्यों न फजीहत होय ॥ 27 ॥

करत निपुनई गुन बिना, रहिमन निपुन[17] हजूर।
मानहु टेरत बिटप चढ़ि, मोहि समान को कूर[18] ॥ 28 ॥

करम हीन रहिमन लखो, धँसो बड़े घर चोर।
चिंतत ही बड़ लाभ के, जागत ह्वै गो भोर ॥ 29 ॥

पाठान्तर—1. ये। 2. घर-घर।

(25) इसी भाव का सूर का एक दोहा यों है—

सीप गयो मुकता भयो, कदली भयो कपूर।
अहिफन गयो तो विष भयो, संगति को फल सूर॥

3. यारी। 4. छोड़ि दो। 5. अब रहीम वे नाहिं। 6. आछो। 7. छोटे काम बड़े करें। 8. कहैं। 9. गिरिधर। 10. जाइ। 11. जाइ। 12. कोइ। 13. होइ। 14. कोइ। 15. कैसो। 16 आपनि। 17. गुनी। 18. यहि प्रकार हम कूर।

कहि रहीम इक दीप तें, प्रगट सबै दुति होय।
तन सनेह कैसे दुरै, दृग दीपक जरु दोय ॥ 30 ॥

कहि रहीम धन[1] बढ़ि घटे, जात धनिन की बात।
घटै बढ़ै उनको कहा, घास बेंचि जे खात ॥ 31 ॥

कहि रहीम या जगत तें,[2] प्रीति गई दै टेर[3]।
रहि रहीम नर नीच में, स्वारथ स्वारथ हेर[4] ॥ 32 ॥

कहि रहीम संपति सगे, बनत बहुत बहु रीत।
बिपति कसौटी जे[5] कसे, ते ही साँचे मीत ॥ 33 ॥

कहु रहीम केतिक रही, केतिक गई बिहाय।
माया ममता मोह परि, अंत चले[6] पछिताय ॥ 34 ॥

कहु रहीम कैसे निभै, बेर केर को[7] संग।
वे डोलत रस आपने,[8] उनके फाटत अंग ॥ 35 ॥

कहु रहीम कैसे बनै, अनहोनी ह्वै[9] जाय[10]।
मिला[11] रहै औ ना मिलै, तासों कहा बसाय[12] ॥ 36 ॥

कागद को सो पूतरा, सहजहि में घुलि जाय।
रहिमन यह अचरज लखो, सोऊ खेंचत बाय ॥ 37 ॥

काज परै कछु और है, काज सरै कछु और।
रहिमन भँवरी[13] के भए नदी सिरावत मौर ॥ 38 ॥

काम न काहू आवई,[14] मोल रहीम न लेइ।
बाजू टूटे बाज को, साहब[15] चारा देइ ॥ 39 ॥

पाठान्तर—(30) यह महमद के नाम सरोज आदि कई ग्रंथों में मिलता है—

एक दीप तें गेह की, प्रगट सबै दुति होय।
मन की नेह कहाँ छिपै, दृग दीपक जहँ होय ॥

1. निधि। 2. से। 3. टेरि। 4. हेरि। 5. जो। 6. चलं। 7. क
8. आपुने। 9. हुइ। 10 जाइ। 11. मिलो। 12. बसाइ। 13. भँउरिन। 1
आव ही। 15. साहेब।

काह[1] करौं बैकुंठ लै, कल्प बृच्छ[2] की[3] छाँह।
रहिमन दाख[4] सुहावनो, जो गल पीतम[5] बाँह॥ 40॥

काह कामरी पामरी, जाड गए से काज।
रहिमन भूख बुताइए, कैस्यो मिलै अनाज॥ 41॥

कुटिलन संग रहीम कहि, साधू बचते नाँहि।
ज्यों नैना सैना करें, उरज उमेठे जाँहि॥ 42॥

कैसे निबहैं निबल जन, करि सबलन सों गैर।
रहिमन बसि सागर विषे, करत मगर सों बैर॥ 43॥

कोउ रहीम जनि काहु के, द्वार गये पछिताय।
संपति के सब जात हैं, बिपति सबै लै जाय॥ 44॥

कौन बड़ाई जलधि मिलि[6], गंग नाम भो धीम।
केहि की प्रभुता नहिं घटी[7], पर घर गये रहीम॥ 45॥

खरच बढ्यो, उद्यम घट्यो, नृपति निठुर मन कीन।
कहु रहीम कैसे जिए, थोरे जल को मीन॥ 46॥

खीरा सिर तें काटिए, मलियत[8] नमक बनाय।
रहिमन करुए मुखन को, चहिअत इहै सजाय॥ 47॥

पाठान्तर—1. कहा। 2 वृक्ष। 3. कै। 4. द्राक। 5. प्रीतम-गल-बाँह।
(41) कैसउ मिलै जु नाज।
(42) रहिमन ओछे संग बसि, सुजन बाँचते नाँहि।
(43) यह दोहा वृन्द विनोद में भी है और रहिमन के स्थान पर 'जैसे' है। पाठाको गैर।
6. जाय समानी उदधि मे।
7. काकी महिमा नहि घटी।
(46) रहिमन वे नर क्यो करें, ज्यो थोरे जल मीन।
8. भरिए।
(47) इसका दूसरा पाठांतर है—
खीरा को मुँह काटि के, मलियत लोन लगाय।
रहिमन करुये मुखन को, चहिये यही सजाय॥

खंचि चढनि, ढीली ढरनि, कहहु कौन यह प्रीति।
आज काल मोहन गही, वंस दिया की रीति ॥ 48 ॥

खैर, खून[1], खाँसी, खुसी, बैर, प्रीति, मदपान।
रहिमन दाबे ना दबैं, जानत सकल जहान ॥ 49 ॥

गरज आपनी आपसों, रहिमन कही न जाय[2]।
जैसे कुल की[3] कुलबधू, पर घर जात लजाय[4] ॥ 50 ॥

गहि[5] सरनागति राम की,[6] भवसागर की[7] नाव।
रहिमन जगत उधार कर, और न कछू उपाव ॥ 51 ॥

गुन ते लेत रहीम जन, सलिल कूप ते काढ़ि।
कूपहु[8] ते कहुँ होत है, मन काहू को[9] बाढ़ि ॥ 52 ॥

गुरता फबै[10] रहीम कहि, फबि आई है जाहि।
उर पर कुच नीके लगैं, अनत बतोरी आहि ॥ 53 ॥

चरन छुए मस्तक छुए, तेहु[11] नहि छांड़ति पानि।
हियो[12] छुवत प्रभु छोड़ि दै, कहु रहीम का जानि ॥ 54 ॥

चारा प्यारा जगत में, छाला हित कर लेय[13]।
ज्यों रहीम आटा लगे, त्यों मृदंग स्वर देय[14] ॥ 55 ॥

चाह गई चिंता मिटी, मनुआ बेपरवाह।
जिनको कछू न चाहिए, वे साहन के साह ॥ 56 ॥

चित्रकूट मे रमि रहे, रहिमन अवध-नरेस।
जा पर बिपदा पड़त[15] है, सो आवत यहि देस ॥ 57 ॥

चिंता बुद्धि परेखिए, टोटे परख त्रियाहि।
सगे कुवेला परखिए, ठाकुर गुनो किआहि ॥ 58 ॥

पाठान्तर—1. इस्क, मुश्क। 2. जाइ। 3. कै। 4. लजाइ। 5. गहु। 6. सरनागत राम 7. कै। 8. कूपहुँ। 9. कर। 10. फबइ। 11. तऊ। 12. हिए। 13. लेइ। 14. देइ। 15. परति।

(57) आए राम रहीम कवि, किए जती को भेष।
जाको बिपता परति है, सो कटती सुव देस ॥

छिमा बड़न[1] को चाहिए, छोटेन को उतपात।
का रहीमन हरि को घट्यो, जो भृगु मारी लात ॥ 59 ॥

छोटेन सो सोहैं बड़े, कहि रहीम यह रेख[2]।
सहसन को हय बाँधियत, लै दमरी को[3] मेख ॥ 60 ॥

जब लगि जीवन जगत में, सुख दुख मिलन अगोट।
रहिमन फूटे गोट ज्यों, परत दुहुँन सिर चोट ॥ 61 ॥

जब लगि वित्त न आपुने, तब लगि मित्र न कोय[4]।
रहिमन अंबुज अंबु बिनु, रवि नाहिन हित होय[5] ॥ 62 ॥

ज्यों नाचत कठपूतरी, करम नचावत गात।
अपने हाथ रहीम ज्यों, नहीं आपुने हाथ ॥ 63 ॥

जलहिं मिलाय[6] रहीम ज्यों, कियो आपु सम छीर।
अँगवहि आपुहि आप त्यों, सकल आँच की भीर ॥ 64 ॥

जहाँ गाँठ तहँ रस नहीं, यह रहीम जग जोय।
मँड़ए तर की गाँठ में, गाँठ गाँठ रस होय ॥ 65 ॥

जानि अनीती जे करैं, जागत ही रह सोइ।
ताहि सिखाइ जगाइबो, रहिमन उचित न होइ ॥ 66 ॥

जाल परे जल जात बहि, तजि मीनन को मोह।
रहिमन मछरी नीर को, तऊ न छाँड़त छोह ॥ 67 ॥

जे गरीब पर हित करैं[7], ते रहीम बड़ लोग।
कहाँ सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई जोग ॥ 68 ॥

पाठान्तर—1. बड़ेन। 2. लेख। 3. कै।
(61) रहिमन यह ससार में, सब सुख मिलत अगोट।
जैसे फूटे नरद के, परत दुहुन सिर चोट ॥
4. कोई। 5. रवि ताकर रिपु होय, होइ। 6. मिलाइ।
(65) यह दोहा कुछ हेर-फेर के साथ 'अहमद' के नाम भी मिलता है।
7. को आदरें।

जे रहीम विधि बड़ किए, को कहि दूषन काढ़ि।
चंद्र दूबरो कूबरो, तऊ नखत तें बाढ़ि॥ 69॥

जे सुलगे ते बुझि गए, बुझे ते सुलगे नाहिं।
रहिमन दाहे प्रेम के, बुझि बुझि कै सुलगाहिं॥ 70॥

जेहि अंचल दीपक दुरयो, हन्यो सो ताही गात।
रहिमन असमय के परे, मित्र शत्रु ह्वै जात॥ 71॥

जेहि रहीम तन मन लियो, कियो हिए बिच भौन।
तासों दुख सुख कहन की, रही बात अब कौन॥ 72॥

जैसी जाकी बुद्धि है, तैसी कहै बनाय।
ताकों बुरो न मानिए, लेन कहाँ सो[1] जाय॥ 73॥

जसी परै सो सहि रहै, कहि[2] रहीम यह देह।
धरती पर ही परत है, शीत घाम औ मेह॥ 74॥

जैसी तुम हमसो करी, करी करा जो तोर।
बाढ़े दिन के मीत हौ, गाढ़े दिन रघुबीर॥ 75॥

जो अनुचितकारी तिन्हैं, लगै अंक परिनाम।
लखे उरज उर बेधियत, क्यों न होय मुख स्याम॥ 76॥

जो घर ही में घुस[3] रहे, कदली सुपत सुडील।
त रहीम तिनतें भले, पथ के अपत करील॥ 77॥

जो पुरुषारथ ते कहूँ, सपति मिलत[4] रहीम।
पेट लागि बैराट घर, तपत रसोई भीम॥ 78॥

---

(69) तुलसी सतसई में इसी भावार्थ का यह दोहा भी है—
होहिं बड़े लघु समय सह, तो लघु सकहिं न काढ़ि।
चंद्र दूबरो कूबरो, तऊ देखत तें बाढ़ि॥

पाठान्तर—1. सु। 2. कह।
(75) रहिमन।
3. घुसि। 4. मिलति।

जो बड़ेन को लघु कहें, नहिं रहीम घटि जाहिं[1]।
गिरधर मुरलीधर कहे, कछु दुख मानत नाहिं ॥ 79 ॥

जो मरजाद चली सदा, सोई तौ ठहराय।
जो जल उमगैं पारतें, सो रहीम बहि जाय ॥ 80 ॥

जो रहीम उत्तम प्रकृति[2], का करि सकत कुसंग।
चंदन विष व्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग ॥ 81 ॥

जो रहीम ओछो बढ़ै, तौ अति ही इतराय[3]।
प्यादे सों फरजी भयो, टेढ़ो टेढ़ो जाय[4] ॥ 82 ॥

जो रहीम करिबो हुतो, ब्रज को इहै हवाल।
तौ काहे कर पर धर्यौ, गोवर्धन गोपाल[5] ॥ 83 ॥

जो रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोय[6]।
बारे उजियारो लगे, बढे अँधेरो होय[7] ॥ 84 ॥

जो रहीम गति दीप की, सुत सपूत की सोय[8]।
बड़ो उजेरो तेहि रहे, गए अँधेरे होय[9] ॥ 85 ॥

जो रहीम जग मारियो, नैन बान की चोट।
भगत भगत कोउ बचि गये, चरन कमल की ओट ॥ 86 ॥

जो रहीम दीपक दसा, तिय राखत पट ओट।
समय परे ते होत है, वाही पट की चोट ॥ 87 ॥

पाठान्तर—1. बड़ेन सो कोऊ घटि कहै, नहिं वे कछु घटि जाहिं।
(80) तेहि प्रमान चलिबो भलो, जो सब दिन ठहराय।
उमरि चलै जल पार तें, तो रहीम बहि जाय॥
2. रहिमन उत्तम प्रकृति को।
3. ओछे बढ़ै, अफ़्त करत उत्पात।
4. तिरछो तिरछो जात।
5. तौ कत मातहि दुख दियो, गिरधर धरि गोपाल।
6. कै सोइ। 7. होइ। 8. सोइ। 9. अँधेरो होइ।

जो रहीम पगतर परो, रगरि नाक अरु सीस।
निठुरा आगे रोयबो, आँस गारिबो खीस॥ 88 ॥

जो रहीम तन हाथ है, मनसा कहुँ किन जाहिं[1]।
जल में जो छाया परी, काया भीजति नाहिं॥ 89 ॥

जो रहीम भावी कतौं[2] होति आपुने[3] हाथ।
राम न जाते हरिन संग, सीय न रावन साथ॥ 90 ॥

जो रहीम होती कहूँ, प्रभु-गति अपने हाथ।
तौ कोधौं केहि मानतो, आप बड़ाई साथ॥ 91 ॥

जो विषया संतन तजी, मूढ़ ताहि लपटाय।
ज्यों नर डारत वमन कर, स्वान स्वाद सों खाय॥ 92 ॥

टूटे सुजन मनाइए, जौ टूटे सौ बार।
रहिमन फिरि फिरि पोहिए, टूटे मुक्ताहार॥ 93 ॥

तन[4] रहीम है कर्म वस, मन राखो ओहि[5] ओर।
जल में उलटी नाव ज्यों, खैंचत गुन के जोर॥ 94 ॥

तब ही लौ[6] जीबो भलो, दीबो होय न धीम।
जग मे रहिबो कुचित गति, उचित न होय रहीम[7]॥ 95 ॥

तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहिं[8] न पान।
कहि रहीम पर काज हित, संपति सँचहि सुजान॥ 96 ॥

तासों ही कछु पाइए, कीजै जाकी आस।
रीते सरवर पर गये, कैसे बुझै पियास॥ 97 ॥

पाठान्तर—1. जो रहीम तन हाथ है, मनसा कहुँ किन जाहिं।
2. कतहुँ। 3. आपने। 4. तनु। 5. उहि। 6. लगि।
7. बिन दीबो जीबो जगत, हमहिं न रुचै रहीम॥
8. पियत।

तेहि प्रमान चलिवो भलो, जौं सब दिन ठहराइ।
उमड़ि चलै जल पार ते, जो रहीम बढ़ि जाइ॥ 98॥

तैं रहीम अब कौन है, एती खैंचत बाय।
खस कागद को पूतरा[1], नमी माँहि खुल जाय॥ 99॥

थोथे बादर क्वांर के, ज्यों रहीम घहरात।
धनी पुरुष निर्धन भये, करैं पाछिली बात॥ 100॥

थोरो किए बड़ेन की, बड़ी बड़ाई होय।
ज्यों रहीम हनुमंत को, गिरधर कहत न कोय॥ 101॥

दादुर, मोर, किसान मन, लग्यो रहै घन माँहि।
रहिमन चातक रटनि हू, सरवर को कोउ नाहिं॥ 102॥

दिव्य दीनता के रसहिं, का जानै जग अंधु।
भली बिचारी दीनता, दीनबन्धु से बन्धु॥ 103॥

दीन सबन को लखत है[2], दीनहिं लखै न कोय[3]।
जो रहीम दीनहिं लखै, दीनबंधु सम होय[4]॥ 104॥

दीरघ दोहा अरथ के, आखर थोरे आहिं।
ज्यों रहीम नट कुण्डली, सिमिटि कूदि चढ़ि जाहिं॥ 105॥

दुख नर सुनि हाँसी करैं, धरत रहीम न धीर।
कही सुनै सुनि सुनि करैं, ऐसे वे रघुबीर॥ 106॥

पाठान्तर—1. पूतरो।

(101) रहीम ने हनुमान जी के पहाड़ उठाने पर दूसरा भाव भी घटाया है जैसे—

ओछो काम बड़ो करै, तौ न बड़ाई होय।

इसमें हनुमान जी को बड़प्पन दिया है।

2. दीन लखैं सब जगत को।

3. कोइ।

4. रहिमन मली सो दीनता नरो देवता होय।

दुरदिन परे रहीम कहि, दुरथल जैयत भागि।
ठाढ़े हूजत घूर पर, जब घर लागत आगि ॥ 107 ॥

दुरदिन परे रहीम कहि, भूलत सब[1] पहिचानि।
सोच नहीं वित हानि को[2], जो न होय हित हानि ॥ 108 ॥

देनहार कोउ और है, भेजत सो दिन रैन।
लोग भरम हम पै धरें[3], याते नीचे नैन ॥ 109 ॥

दोनों रहिमन एक से, जो लौं बोलत नाहिं।
जान परत हैं काक पिक, ऋतु बसंत के माँहि ॥ 110 ॥

धन थोरो इज्जत बड़ी, कह रहीम का बात।
जैसे कुल की कुलवधू, चिथड़न माँह[4] समात ॥ 111 ॥

धन दारा अरु सुतन सों, लगो रहे नित चित्त[5]।
नहिं रहीम कोउ लख्यो, गाढ़े दिन को मित्त[6] ॥ 112 ॥

धनि रहीम गति मीन की[7], जल बिछुरत जिय जाय।
जिअत कंज तजि अनत[8] बसि, कहा भौंर को[9] भाय ॥ 113 ॥

धनि रहीम जल पंक को[10] लघु जिय पिअत अघाय[11]।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत[12] पिआसो जाय[13] ॥ 114 ॥

धरती की सी रीत है, सीत घाम औ मेह।
जैसी परे सो सहि रहै, त्यों रहीम यह देह[14] ॥ 115 ॥

पाठान्तर—1. विकल सबै। 2. कर। 3. धरैं।

(109) इसका दूसरा पाठान्तर है—

कछुक सोच धन हानि को, बहुत सोच हित हानि।

(110) वृन्द विनोद में भी यह दोहा है जिसमे केवल इतना पाठान्तर है—भले बुरे सब एक से।

4. माँहि। 5. सों, रहत लगाए चित्त।

6. मयो रहीम खोजत नहीं। गाढ़े दिन को मित्त ॥

7. कै। 8. अंत। 9. मर। 10. नहै। 11. अघाद। 12. पाल।

13. पिपासो जाइ। 14. इसी संग्रह का 74वाँ दोहा देखिये।

धूर धरत नित सीस पै[1], कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज मुनिपत्नी तरी, सो ढूंढत गजराज[2] ॥ 116 ॥

नहिं रहीम कछु रूप गुन, नहिं मृगया अनुराग।
देसी स्वान जो राखिए, भ्रमत भूख ही लाग ॥ 117 ॥

नात नेह दूरो भली, लो रहीम जिय जानि।
निकट निरादर होत है, ज्यों गड़ही को पानि ॥ 118 ॥

नाद रीझि तन देत मृग, नर धन हेत[3] समेत[4]।
ते रहीम पशु से अधिक, रीझेहु कछू न देत ॥ 119 ॥

निज कर क्रिया रहीम कहि, सुधि भावी के हाथ।
पाँसे अपने हाथ मे, दाँव न अपने हाथ ॥ 120 ॥

नैन सलोने अधर मधु, कहि रहीम घटि कौन।
मीठो भावै लोन[5] पर, अरु मीठे पर लौन ॥ 121 ॥

पन्नग बेलि पतिव्रता, रति सम सुनो सुजान।
हिम रहीम बेली दही, सत जोजन दहियान ॥ 122 ॥

परि रहिवो मरिबो भलो, सहिबो कठिन कलेस।
बामन है बलि को छल्यो, भलो दियो[6] उपदेस ॥ 123 ॥

पसरि पत्र झँपहि पितहि, सकुचि देत ससि सीत।
कहु रहीम कुल कमल के, को बैरी को मीत ॥ 124 ॥

पाठान्तर—1. गजरज ढूंढत मलिन मे, छार उछारत सीस पर।
2. जिहि रज मुनि-पतनी तरी, तिहि खोजत गजराज ॥
3. देत। 4. लुटाइ। 5. लौन। 6. दीन्हेउ।

पात पात को सींचिवो, वरी वरी को लौन।
रहिमन ऐसी बुद्धि को, कहो वरैगो कौन[1] ॥ 125 ॥

पावस देखि रहीम मन, कोइल साधे मौन।
अब दादुर बक्ता भए, हमको पूछत कौन ॥ 126 ॥

पिय वियोग तें दुसह दुख, सूने दुख ते अंत।
होत अंत ते फिर मिलन, तोरि सिधाए कंत ॥ 127 ॥

पूरुष पूजें देवरा, तिय पूजें रघुनाथ।
कहँ रहीम दोउन बनै, पँड़ो-बैल को साथ ॥ 128 ॥

प्रीतम[2] छवि नैनन बसी, पर छवि कहाँ समाय।
भरी सराय रहीम लखि, पथिक आप फिर जाय[3] ॥ 129 ॥

प्रेम पंथ ऐसो कठिन, सब कोउ निबहत नाहिं।
रहिमन मैन-तुरंग चढ़ि, चलिवो पावक माहिं ॥ 130 ॥

फरजी साह न ह्वै सकै, गति टेढ़ी तासीर।
रहिमन सीधे चालसों, प्यादो होत वजीर ॥ 131 ॥

बड माया को दोष यह, जो कबहूँ घटि जाय।
तो रहीम मरिबो भलो, दुख सहि जिय बलाय ॥ 132 ॥

बड़े दीन को दुख सुनो, लेत दया उर आनि।
हरि हाथी सों कब हुतो, कहु रहीम पहिचानि ॥ 133 ॥

---

1 'तुलसी सतसई' का यह दोहा इसी आशय का है—
पात पात को सींचिबो, बरी-बरी को लोन।
तुलसी खोटे चतुरपन, कलि दुहु के कहु कौन।(काज सरेगो कौन।)
(125) तुलसी पावस के समय, धरी कोकिलन मौन।
अब तो दादुर बोलिहैं, हमहिं पूछिहै कौन।
पाठान्तर— 2. मोहन।
3. जो, पथिक आय फिरि जाय ॥
(133) अरज सुने गरजै तुरत, गरज मिटाई आनि।
कहि रहीम वा दिन हुतो, हरि हाथी पहिचानि ॥

बड़े पेट के भरन को, है रहीम दुख बाढ़ि।
यातें हाथी हहरि कै, दयो दाँत द्वै काढ़ि ॥ 134 ॥

बड़े बड़ाई नहिं तजें, लघु रहीम इतराइ।
राइ करौंदा होत है, कटहर होत न राइ ॥ 135 ॥

बड़े बड़ाई ना करैं, बड़ो न बोलें बोल।
रहिमन हीरा कब कहै, लाख टका मेरो मोल ॥ 136 ॥

बढ़त रहीम धनाढ्य धन, धनौ[1] धनी को[2] जाइ।
घटै बढ़ै वाको कहा, भीख माँगि जो खाइ ॥ 137 ॥

बसि कुसंग चाहत कुसल, यह रहीम जिय सोस।
महिमा घटी समुद्र की, रावन बस्यो परोस ॥ 138 ॥

बाँकी चितवन चित चढ़ी, सूधी तौ कछु धीम।
गाँसी ते बढ़ि होत दुख, काढ़ि न कढ़त[3] रहीम ॥ 139 ॥

बिगरी बात बनै नहीं, लाख करो किन कोय।
रहिमन फाटे दूध को, मथे न माखन होय[4] ॥ 140 ॥

बिपति भए धन ना रहे, रहे[5] जो लाख करोर।
नभ तारे छिपि जात हैं, ज्यों रहीम भए[6] भोर ॥ 141 ॥

भजौं तो काको मैं भजौं[7], तजौं तो काको आन।
भजन तजन ते बिलग हैं, तेहि रहीम तू जान ॥ 142 ॥

पाठान्तर—1. धनैं। 2. के।

(138) वृन्द का एक दोहा इसी आशय का है—

दुर्जन के संसर्ग तें, सज्जन सहत कलेस।
ज्यों दसमुख अपराध तें, बन्धन लह्यो कलेस ॥

3. मकढ़। अधत।

4. सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाँटि न लैहैं कोइ ॥

5. होय। 6. मैं। 7. भजउँ तो काको मैं भजऊँ।

भलो भयो घर ते छुट्यो, हँस्यो सीस परिखेत।
काके काके नवत हम, अपन[1] पेट के हेत॥ 143।

भार झोंकि के भार मे, रहिमन उतरे पार।
पै बूडे मझधार मे, जिनके सिर पर भार॥ 144।

भावी काहू ना दही, भावी दह भगवान[2]।
भावी ऐसी प्रबल है, कहि रहीम यह जान॥ 145॥

भावी या उनमान को, पाडव बनहि रहीन।
जदपि गौरि सुनि बांझ है, बरु[3] है संभु अजीम॥ 146॥

भीत गिरी पाखान को, अररानी वहि ठाम।
अब रहीम धोखो यहै, को लागै केहि काम॥ 147।

भूप गनत लघु गुनिन को, गुनी गनत लघु भूप।
रहिमन गिर तें भूमि लौं, लखौ[4] तो एकै रूप॥ 148॥

मथत मथत माखन रहै, दही मही बिलगाय।
रहिमन सोई मीत है, भीर परे ठहराय[5]॥ 149॥

मनसिज माली की[6] उपज, कहि रहीम नहिं जाय।
फल श्यामा के उर लगे, फूल श्याम उर आय[7]॥ 150॥

मन से कहाँ रहीम प्रभु, दृग सो कहाँ दिवान।
देखि दृगन जो आदरै, मन तेहि हाथ बिकान॥ 151॥

मदन के मरिहू[8] गये, औगुन गुन[9] न सिराहिं[10]।
ज्यो रहीम बाँधहु बँधे, मरहा[11] ह्वै अधिकाहिं॥ 152॥

पाठान्तर—(144) जाके सिर अस भार, सो कस झोंकत भार अस।
रहिमन उतरे पार, भार झोंकि सब भार मे॥

1. अधम। 2. दहो एक भगवान। 3. हरु वर। 4 न लखो।
5. 'शक्र' सो बहुमोल जो भीर परे ठहराय॥
6. कै। 7. मांय। 8. मारेहु। 9. गनि। 10. सराहि। 11. मुरहा।

मनि मानिक महँगे किये, ससतो तृन जल नाज।
याही ते हम जानियत, राम गरीब निवाज ॥ 153 ॥

महि नभ सर पंजर कियो, रहिमन बल अवसेप।
सो अर्जुन बैराट घर, रहे नारि के भेष ॥ 154 ॥

माँगे घटत रहीम पद, कितो करौ बढ़ि काम।
तीन पैग बसुधा करो, तऊ बावनै नाम ॥ 155 ॥

माँगे मुकरि न को गयो, केहि न त्यागियो साथ।
माँगत आगे सुख लह्यो, ते रहीम रघुनाथ ॥ 156 ॥

मान सरोवर ही मिले, हंसनि मुक्ता भोग।
सफरिन भरे रहीम सर, बक-बालकनहिं जोग[1] ॥ 157 ॥

मान सहित विष खाय के, संभु भये जगदीस।
बिना मान[2] अमृत पिये, राहु कटायो सीस ॥ 158 ॥

माह मास लहि टेसुआ, मीन परे थल और।
त्यों रहीम जग जानिये, छुटे आपुने ठौर ॥ 159 ॥

मीन कटि जल धोइये, खाये अधिक पियास।
रहिमन प्रीति सराहिये, मुयेउ मीत कै आस ॥ 160 ॥

मुकता कर करपूर कर, चातक जीवन जोय[3]।
एतो बड़ो रहीम जल, ब्याल बदन विष होय[4] ॥ 161 ॥

पाठान्तर—1. विपुल बलाकनि जोग।
2. बिन आदर अमृत भख्यो।
(159) इसका दूसरा पाठ है—
माह मास कर भिनुसरा, मीन सुखी नहिं सोर।
ज्यों मछरी जग ना जियइ, बिछुरे आपन ठौर ॥
3. चातक तृष हर सोय। 4. कुयल परे विष होय।
इसी भाव का सूरदास जी का एक दोहा है—
सीप गयो मुक्ता भयो, कदली भयो कपूर।
अहिफन गयो तो विष भयो, संगति को फल सूर।

मुनि नारी पाषान ही, कपि पसु गुह मातंग।
तीनों तारे राम जू, तीनों मेरे अंग ॥ 162 ॥

मूढ मंडली में सुजन, ठहरत नहीं विसेषि।
स्याम कचन मे सेत ज्यो, दूरि कीजिअत देखि ॥ 163 ॥

यद्यपि अवनि अनेक हैं, कूपवंत[1] सरिताल।
रहिमन मानसरोवरहिं,[2] मनसा करत मराल ॥ 164 ॥

यह न रहीम सराहिये, देन लेन की प्रीति।
प्रानन बाजी राखिये, हारि होय कै जीति ॥ 165 ॥

यह रहीम निज संग लै, जनमत जगत न कोय।
बैर, प्रीति, अभ्यास, जस, होत होत ही होय ॥ 166 ॥

यह रहीम मानै नहीं, दिल से नवा जो होय।
चीता, चोर, कमान के, नये[3] ते अवगुन होय ॥ 167 ॥

याते जान्यो मन भयो, जरि बरि भस्म बनाय[4]।
रहिमन जाहि लगाइये, सो रूखो ह्वै जाय ॥ 168 ॥

ये रहीम फीके दुवो, जानि महा संतापु।
ज्यो तिय कुच आपुन गहे, आप बड़ाई आपु ॥ 169 ॥

ये रहीम दर-दर[5] फिरै, माँगि मधुकरी खाहिं।
यारो[6] यारो छाँड़ि[7] देउ,[8] वे रहीम अब नाहिं[9] ॥ 170 ॥

यों रहीम गति बड़ेन की,[10] ज्यों तुरग व्यवहार।
दाग दिवावत आपु तन, सही होत असवार ॥ 171 ॥

पाठान्तर—1. तोयवत। 2. एकै मानसर।
(164) इसी आशय का तुलसीदास जी का एक दोहा है—
जद्यपि अवनि अनेक सुख, तोय तासु रस ताल।
सतत तुलसी मानसर, तदपि न तजहिं मराल ॥
3. नए। 4. बनाय। 5. घर-घर। 6. यारी। 7. छोड़ि। 8. दो।
9. अब रहीम वे नाहिं। 10. कै।

यों रहीम तन[1] हाट में, मनुआ गयो विकाय।
ज्यों जल में छाया परे, काया भीतर नाँय ॥ 172 ॥

यों रहीम सुख दुख सहत, बड़े लोग सह साँति।
उवत चंद जेहि भाँति सो, अथवत ताही[2] भाँति ॥ 173 ॥

रन, बन, व्याधि, विपत्ति में, रहिमन मरै[3] न रोय[4]।
जो रच्छक[5] जननी जठर, सो हरि गये कि सोय[6] ॥ 174 ॥

रहिमन असी न कीजिये[7], गहि रहिये निज कानि[8]।
सैंजन अति फूले तऊ डार पात की हानि[9] ॥ 175 ॥

रहिमन अपने गोत को[10], सबै चहत उत्साह।
मृग उछरत आकाश कों[11], भूमी खनत बराह[12] ॥ 176 ॥

रहिमन अपने[13] पेट सों, बहुत कह्यो समुझाय।
जो तू अन खाये रहे, तासों को[14] अनखाय ॥ 177 ॥

रहिमन अब वे बिरछ कहँ, जिनकी[15] छाँह गंभीर।
बागन बिच बिच देखिअत, सेंहुड़, कुंज, करीर ॥ 178 ॥

रहिमन असमय के परे, हित अनहित ह्वै जाय।
बधिक बधै मृग बानसों, रुधिरे देत बताय ॥ 179 ॥

रहिमन अँसुआ नैन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ।
जाहि निकारो गेह ते, कस न भेद कहि देइ ॥ 180 ॥

पाठान्तर—1. तनु। 2. वाही। 3 मरउ। 4. रोइ। 5. रक्षक। 6 न सोइ।
7. रहिमन अति मत कीजिये।
8. वित्त आपुनो जानि।
9 अतिसै फूलै सहिजनो, डार पात कै हानि ॥
10. कहँ। 11. आकास कहँ। 12. भूमि खनत बाराह। 13. मैं था।
14. का काहू। 15. जिनकै।

रहिमन आंटा के लगें, बाजत है दिन राति।
घिउ शक्कर जे खात हैं, तिनको कहा बिसाति ॥ 181 ॥

रहिमन उजलो प्रकृत को[1], नहीं नीच को[2] संग।
करिया वासन कर गहे, कालिख लागत अंग ॥ 182 ॥

रहिमन एक दिन वे रहे, बीच न सोहत हार।
वायु जो ऐसी बह गई, बीचन परे पहार[3] ॥ 183 ॥

रहिमन ओछे नरन सो, बैर भलो ना प्रीति।
काटे चाटे स्वान के, दोऊ भाँति विपरीति[4] ॥ 184 ॥

रहिमन कठिन चितान[5] ते, चिंता को[6] चित चेत।
चिता दहति निर्जीव को[7], चिंता जीव समेत ॥ 185 ॥

रहिमन कबहुं बड़ेन के, नाहिं गर्व को लेस।
भार धरैं संसार को, तऊ कहावत सेस ॥ 186 ॥

रहिमन करि सम बल नहीं, मानत प्रभु की धाक।
दाँत दिखावत दीन ह्वै, चलत घिसावत नाक ॥ 187 ॥

रहिमन कहत सुपेट सों, क्यों न भयो तू पीठ।
रीते अनरीते करैं, भरे बिगारत दीठ ॥ 188 ॥

रहिमन कुटिल कुठार[8] ज्यों, करि डारत द्वै टूक[9]।
चतुरन के कसकत रहे, समय चूक की[10] हूक ॥ 189 ॥

रहिमन को कोउ का करै, ज्वारी, चोर, लवार।
जो पति-राखनहार हैं, माखन-चाखनहार ॥ 190 ॥

पाठान्तर—1. कहूँ। 2. नर। 3. इसे मम्मन का भी कहा जाता है। 4 विपरीत।
5. चिताहु। 6. कहूँ। 7. कहूँ।
(188) कहि रहीम या पेट ते, दुहू विधि दीन्ही पीठि।
भूखे भीख मँगावई, भरे डिगावे डीठि॥
8. कुल्हार। 9. करि डारैं दुइ टूक। 10. के।

रहिमन खोजे ऊख में, जहाँ रसन की खानि[1]।
जहाँ गांठ तहँ रस नहीं, यही प्रीति में हानि ॥ 191 ॥

रहिमन खोटी आदि की, सो परिनाम लखाय।
जैसे दीपक तम भखै, कज्जल वमन कराय ॥ 192 ॥

रहिमन गली है साँकरी, दूजो ना ठहराहिं।
आपु अहै तो हरि नहीं, हरि तो आपुन नाहिं ॥ 193 ॥

रहिमन घरिया रहँट की, त्यों ओछे की डीठ।
रीतिहि सनमुख होत है, भरी दिखावै पीठ ॥ 194 ॥

रहिमन चाक कुम्हार को, माँगे दिया न देइ।
छेद में डंडा डारि कै, चहै नांद लै लेइ ॥ 195 ॥

रहिमन छोटे नरन सों[2], होत बड़ो[3] नहीं काम।
मढ़ो दमामो ना बने[4], सौ[5] चूहे के चाम ॥ 196 ॥

रहिमन जगत बड़ाई की, कूकुर की पहिचानि।
प्रीति करै मुख चाटई, बैर करे तन हानि ॥ 197 ॥

रहिमन जग जीवन बड़े, काहु न देखे नैन।
जाय दशानन अछत ही, कपि लागे गथ[6] लेन ॥ 198 ॥

रहिमन जाके बाप को, पानी पिअत न कोय।
ताको गैल आकाश लौं, क्यो न कालिमा होय ॥ 199 ॥

पाठान्तर—1. रहिमन खोजो ऊख में, कहाँ न रस की खानि।
2. से। 3 बड़े। 4. जात है। 5. कहूँ।
(196) बिहारी का एक दोहा इसी भाव का यो है—
कैसे छोटे नरनु ते, सरत बड़ेन को काम।
मढ़्यो दमामो जात क्यो, कहि चूहे के चाम॥
(197) व्यास बड़ाई जगत की।
यह दोहा व्यास जी की साखी की हस्तलिखित प्रति मे दिया है।
6. मढ़।

रहिमन जा डर निसि परै, ता दिन डर सिय कोय।
पल पल करके लागते, देखु कहाँ धौं होय ॥ 200 ॥

रहिमन जिह्वा बावरी, कहि गइ सरग पताल।
आपु तो कहि भीतर रही, जूती खात कपाल ॥ 201 ॥

रहिमन जो तुम कहत थे, संगति ही गुन होय।
बीच उखारी रमसरा, रस काहे ना होय ॥ 202 ॥

रहिमन जो[1] रहिबो चहै, कहै वाहि के दाँव[2]।
जो बासर को निस कहै, तौ कचपची दिखाव ॥ 203 ॥

रहिमन ठहरी धूरि को, रही पवन तें पूरि।
गाँठ युक्ति की खुलि गई, अंत धूरि को धूरि ॥ 204 ॥

रहिमन तब लगि ठहरिए, दान मान सनमान।
घटत मान देखिय जबहिं, तुरतहि करिय पयान ॥ 205 ॥

रहिमन तीन प्रकार ते, हित अनहित पहिचानि।
पर बस परे, परोस बस, परे मामिला जानि ॥ 206 ॥

रहिमन तीर की चोट ते, चोट परे बचि जाय।
नैन बान की चोट ते, चोट परे मरि जाय ॥207 ॥

रहिमन थोरे दिनन को[3], कौन करे मुँह स्याह।
नहीं छलन को परतिया, नहीं करन को[4] ब्याह ॥ 208 ॥

रहिमन दानि दरिद्र तर[5], तऊ जाँचवे[6] योग।
ज्यों सरितन सूखा परे, कुंआ खनावत लोग[7] ॥ 209 ॥

पाठान्तर—1. जहँ। 2. जो भाव। 3. कहँ। 4. कहँ। 5. दरिद्रवस।
6 भाँगिबे।
7. सरिता सर जल सूखि गों, कुंआ खनत सब लोग।

रहिमन दुरदिन के परे, बड़ेन किए घटि काज।
पांच रूप पांडव भए, रथवाहक नल राज॥ 210॥

रहिमन देखि बड़ेन को[1], लघु न दीजिये डारि।
जहाँ काम आवे सुई, कहा करे तलवारि[2]॥ 211॥

रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो[3] छिटकाय[4]।
टूटे से फिर[5] ना मिले, मिले[6] गाँठ[7] परि जाय॥ 212॥

रहिमन धोखे भाव से, मुख से[8] निकसे राम।
पावत पूरन परम गति, कामादिक को धाम॥ 213॥

रहिमन निज मन की[9] विथा, मन ही राखो गोय[10]।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाँटि न लैहैं कोय॥ 214॥

रहिमन निज संपति बिना, कोउ न बिपति सहाय।
बिनु पानी ज्यों जलज को, नहिं रवि सकै बचाय॥ 215॥

रहिमन नीचन संग बसि, लगत कलंक न काहि।
दूध कलारी कर गहे[11], मद समुझै सब ताहि[12]॥ 216॥

रहिमन नीच प्रसंग ते, नित प्रति लाभ विकार।
नीर चोरावै[13] संपुटी, मारु सहे घरिआर[14]॥ 217॥

रहिमन पर उपकार के, करत न यारी[15] बीच।
मांस दियो शिवि[16] भूप ने, दीन्हों हाड़ दधीच॥ 218॥

पाठान्तर—1. कहँ। 2. तरवारि। 3. तोरउ। 4. चटकाय। 5. फिरि।
6. मिलै। 7. गाँठि। 8. ते। 9 कै। 10 राखहु गोइ।
11. दूध कलारिन हाथ लखि। 12. मद कहैं (समुझहि) सब ताहि।
वृंद ने इसी भाव को इस प्रकार कहा है—
जिहि प्रसंग दूषन लगै, तजिये ताको साथ।
मदिरा मानत है जगत, दूध कलाली हाथ॥
13. चुरावत। 14. सहत घरियार। 15. पारै। 16. सिवि।

रहिमन पानी राखिये, बिनु पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरै, मोती, मानुष, चून ॥ 219 ॥

रहिमन प्रीति न कीजिए, जस खीरा ने कीन।
ऊपर से तो दिल मिला, भीतर फाँकें तीन ॥ 220 ॥

रहिमन पेटे सों कहत, क्यों न भये तुम पीठि।
भूखे मान बिगारहु, भरे बिगारहु दीठि ॥ 221 ॥

रहिमन पैंडा प्रेम को, निपट सिलसिली गैल।
बिछलत पाँव पिपोलिका, लोग लदावत बैल ॥ 222 ॥

रहिमन प्रीति सराहिए, मिले होत रँग दून।
ज्यों जरदी हरदी तजै, तजै सफेदी चून ॥ 223 ॥

रहिमन ब्याह बिआधि है, सकहु तो जाहु बचाय।
पायन बेड़ी पड़त है, ढोल बजाय बजाय[1] ॥ 224 ॥

रहिमन बहु भेषज करत, ब्याधि न छाँड़त[2] साथ।
खग मृग बसत अरोग बन, हरि अनाथ के नाथ ॥ 225 ॥

रहिमन बात अगम्य की, कहन सुनन की नाहिं।
जे जानत ते कहत नाहिं, कहत ते जानत नाहिं ॥ 226 ॥

रहिमन बिगरी आदि की[3], बनै न खरचे दाम।
हरि बाढ़े आकाश लौं, तऊ बावनै नाम ॥ 227 ॥

पाठान्तर—(224) फूले फूले फिरत हैं, आज हमारो ब्याह।
तुलसी गाय बजाय के, देत काठ में पाँउ ॥
(225) राम भरोसे जे रहें, परबत पर हरयायँ।
तुलसी बिरवा बाग के, सींचेहु पै मुरझायँ ॥

1. बजाइ बजाइ। 2. छाँड़ति। 3. कै।

रहिमन भेषज के किए, काल जीति जो जात।
बड़े बड़े समरथ भए[1], तौ न कोउ मरि जात ।। 228 ।।

रहिमन मनहिं लगाइ कै[2], देखि लेहु किन कोय[3]।
नर को बस करिबो कहा, नारायण बस होय ।। 229 ।।

रहिमन मारग प्रेम को, मत[4] मतिहीन मझाव।
जो डिगिहै तो फिर कहूँ, नहिं धरने को पाँव ।। 230 ।।

रहिमन माँगत बड़ेन को[5], लघुता होत अनूप।
बलि मख माँगत को[6] गए, धारि बावन को रूप ।। 231 ।।

रहिमन यहि न सराहिये, लेन देन कै प्रीति।
प्रानहिं बाजी राखिये, हारि होय कै जीति ।। 232 ।।

रहिमन यहि संसार मैं, सब सों मिलिये धाइ।
ना जानें केहि रूप में, नारायण मिलि जाइ ।। 233 ।।

रहिमन याचकता गहे, बड़े छोट ह्वै जात।
नारायन हू को भयो, बावन आँगुर गात ।। 234 ।।

रहिमन या[7] तन सूप है, लीजै जगत पछोर।
हलुकन को[8] उड़ि जान दै[9], गरुए राखि बटोर ।। 235 ।।

रहिमन यों सुख होत है, बढ़त देखि निज गोत।
ज्यों बड़री अँखियाँ निरखि, आँखिन को सुख होत ।। 236 ।।

रहिमन रजनी ही भली, पिय सों होय मिलाप।
खरो दिवस किहि काम को रहिबो आपुहि याप ।। 237 ।।

पाठान्तर—1. भये 2. कै। 3. कोइ। 4. बिन बूझें मति जाव। 5. कै। 6. हरि।
7. यह। 8. कहें। 9. जातु है।

रहिमन रहिबो वा[1] भलो, जौ लौं सील समूच।
सील ढील जब देखिए, तुरत कीजिए कूच ॥ 238 ॥

रहिमन रहिला की भली, जो परसै चित लाय।
परसत मन मैलो करे, सो मैदा जरि जाय ॥ 239 ॥

रहिमन राज सराहिए, ससिसम सुखद जो होय[2]।
कहा बापुरो[3] भानु है, तपै[4] तरैयन खोय[5] ॥ 240 ॥

रहिमन राम न उर धरै, रहत विषय लपटाय[6]।
पसु खर खात सवाद सों, गुर गुलियाए खाय[7] ॥ 241 ॥

रहिमन रिस को[8] छाँडि कै, करौ[9] गरीबी भेस।
मीठो बोलो नै चलो, सबै तुम्हारो देस ॥ 242 ॥

रहिमन रिस सहि तजत नहिं, बड़े प्रीति की[10] पौरि।
मूकन मारत आवई, नीद बिचारो दौरि ॥ 243 ॥

रहिमन रीति सराहिए, जो घट गुन सम होय।
भीति आप पै डारि कै, सबै पियावै तोय ॥ 244 ॥

रहिमन लाख भली करो[11], अगुनी अगुन न जाय।
राग सुनत पय पिअत हू, साँप सहज धरि खाय ॥ 245 ॥

रहिमन वहाँ न जाइये, जहाँ कपट को[12] हेत।
हम तन ढारत ढेकुली, सींचत अपनो खेत ॥ 246 ॥

पाठान्तर—1. वाँ, वह। 2. जो विधु की विधि होय। 3. निगोड़े तरनि को।
4 तप्यो। 5 खोइ। 6. लपिटाइ। 7. खाइ।
(241) राम नाम नहिं लेत है, रह्यौ विषय लपटाय।
घास चरैं पसु आप सौं, गुड़ घाल्यो ही खाय॥
(243) रहिमन बड़े निरादरै, तजिय न ताकी पौरि।
8 कह। 9. करहु। 10. कर। 11. करौ। 12. कर।

रहिमन वित्त अधर्म को, जरत न लागै बार।
चोरी करि होरी रची, भई तनिक में छार ॥ 247 ॥

रहिमन विद्या बुद्धि नहिं, नही धरम, जस, दान।
भू पर जनम वृथा धरै[1], पसु बिनु पूंछ विषान ॥ 248 ॥

रहिमन विपदाहू भली, जो थोरे दिन होय।
हित अनहित या जगत में, जानि परत सब कोय ॥ 249 ॥

रहिमन वे नर मर चुके, जे कहुं माँगन जाहिं।
उनते पहिले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं ॥ 250 ॥

रहिमन सीधी चाल सों, प्यादा होत वजीर।
फ़रजी साह न हुइ सकै, गति टेढ़ो तासीर ॥ 251 ॥

रहिमन सुधि सबतें भली, लगै जो बारंबार।
बिछुरे मानुष फिरि मिलें[2], यहै जान अवतार ॥ 252 ॥

रहिमन सो न कछू गनै, जासों लागे नैन।
सहि[3] के सोच बेसाहियो, गयो हाथ को चैन[4] ॥ 253 ॥

राम नाम जान्यो[5] नहीं, भइ पूजा में हानि।
कहि रहीम क्यों मानिहैं, जम के किंकर कानि ॥ 254 ॥

राम नाम जान्यो नहीं, जान्यो सदा उपाधि[6]।
कहि रहीम तिहिं आपुनो, जनम गँवायो बादि ॥ 255।

रीति प्रीति सब सों भली, बैर न हित मित गोत।
रहिमन याही जनम की[7], बहुरि न संगति होत ॥ 256 ॥

रूप, कथा[8], पद, चारु, पट[9], कंचन, दोहा[10], लाल।
ज्यों ज्यों निरखत सूक्ष्मगति, मोल रहीम बिसाल ॥ 257 ॥

पाठान्तर--1. जन्म वृथा भू पर धरेउ। 2. मिलै। 3. सहि। 4. कर। 5. जानेउ। 6. उपादि। 7. कै। 8. कथानक। 9. पद। 10. दूहा।

रूप विलोकि रहीम तहँ, जहँ जहँ मन लगि जाय[1]।
थाके[2] ताकहिं आप बहु, लेत छोड़ाय छोड़ाय[3] ॥ 258 ॥

रोल बिगाड़े राज नैं, मोल बिगाड़े माल।
सनै सनै सरदार की, चुगल बिगाड़े चाल ॥ 259 ॥

लालन[4] मैन तुरग चढ़ि, चलिबो पावक माँहि।
प्रेम-पंथ ऐसो कठिन, सब कोउ निबहत नाहिं ॥ 260 ॥

लिखी रहीम लिलार में, भई आन को[5] आन।
पद कर काटि बनारसो, पहुँचे मगरु[6] स्थान ॥ 261 ॥

लोहे की न लोहार का, रहिमन कही विचार।
जो हनि मारे सीस में, ताही की तलवार ॥ 262 ॥

वरु रहीम कानन भलो, वास करिय फल भोग[7]।
बंधु मध्य धनहीन ह्वै[8], बसिबो उचित न योग[9] ॥ 263 ॥

वहै प्रीति नहिं रीति वह, नहीं पाछिलो हेत।
घटत घटत रहिमन घटै, ज्यों कर लीन्हे रेत ॥ 264 ॥

विधना यह जिय जानि कै, सेसहि दिये न कान।
धरा मेरु सब डोलि हैं, तानसेन के तान ॥ 265 ॥

विरह रूप घन तम भयो, अवधि आस उद्योत।
ज्यों रहीम भादों निसा, चमकि जात खद्योत ॥ 266 ॥

पाठान्तर—1. रूप रहीम विलोकतहिं, मन जहँ-जहँ लगि जाइ।
2. पावयो। 3. छुड़ाइ-छुड़ाइ। 4. रहिमन। 5. कँ।
6. मगहूस्थान, मगहूरथान।
7. वरु रहीम कानन बसिय, असन करिय फल तोय।
8. गति दीन हुई। 9. कोय।

वे रहीम नर धन्य हैं, पर उपकारी अंग[1]।
बाँटनवारे को लगे, ज्यों मेंहदी को रंग ॥ 267 ॥

सदा नगारा कूच का,[2] बाजत आठों जाम।
रहिमन या जग आइ के, को करि रहा मुकाम ॥ 268 ॥

सब को[3] सब कोऊ करै, कै सलाम कै राम।
हित रहीम तब जानिए, जब कछु अटकै काम ॥ 269 ॥

सबै कहावै लसकरी, सब[4] लसकर कहँ जाग[5]।
रहिमन सेल्ह[6] जोई सहै, सो जागीरै खाय ॥ 270 ॥

समय दसा कुल देखि कै, सबै करत सनमान।
रहिमन दीन अनाथ को,[7] तुम बिन को भगवान ॥ 271 ॥

समय परे ओछे बचन, सब के सहै[8] रहीम।
सभा दुसासन पट गहे, गदा लिए रहे[9] भीम ॥ 272 ॥

समय पाय फल होत है, समय पाय झरि जाय।
सदा रहे नहिं एक सी, का रहीम पछिताय ॥ 273 ॥

समय लाभ सम लाभ नहिं, समय चूक सम चूक।
चतुरन चित रहिमन लगी, समय चूक की हूक ॥ 274 ॥

सरवर के खग एक से, बाढ़त प्रीति न धीम।
पै मराल को[10] मानसर, एकै ठौर रहीम ॥ 275 ॥

सर सूखे पच्छी[11] उड़ै, औरै सरन समाहिं।
दीन मीन बिन[12] पच्छ के, कहु रहीम कहँ जाहिं ॥ 276 ॥

स्वारथ रचत[13] रहीम सब,[14] औगुनहू जग माँहि।
बड़े बड़े बैठे लखौ,[15] पथ रथ कूबर छाँहि ॥ 277 ॥

पाठान्तर—1. वे रहीम नर धन्य हैं, पर उपकारी अंग।
[redacted]. कर। 3. कहँ 4. जो, या। 5. जाइ। 6 सैल। 7. के। 8. सहत।
[redacted]. रहे गहि। 10. कै। 11. पछी। 12. बिनु। 13, रचत।
14. कह। 15. लखहु।

स्वासह तुरिय उच्चरै, तिय है निहचल चित्त।
पूत परा घर जानिए, रहिमन तीन पवित्त ॥ 278 ॥

साधु सराहै साधुता[1], जती जोखिता जान।
रहिमन[2] सांचे सूर को, बैरी करै बखान ॥ 279 ॥

सौदा करो सो करि चलो, रहिमन याही बाट।
फिर सौदा पैहो नही, दूरि जान है बाट ॥ 280 ॥

सतत संपति जानि कै, सब को सब कछु देत[3]।
दीनबंधु बिनु दीन को, को रहीम सुधि लेत ॥ 281 ॥

संपति भरम गँवाइ कै, हाथ रहत कछु नाहिं।
ज्यों रहीम ससि रहत है, दिवस अकासहिं माहिं ॥ 282 ॥

ससि की सीतल चांदनी, सुंदर, सबहिं सुहाय।
लगे चोर चित में लटी, घटि रहीम मन आय[4] ॥ 283 ॥

ससि, सुकेस, साहस, सलिल, मान सनेह रहीम[5]।
बढ़त बढ़त बढ़ि जात हैं, घटत घटत घटि सीम ॥ 284 ॥

सीत हरत, तम हरत नित, भुवन भरत नहिं चूक।
रहिमन तेहि रबि को कहा, जो घटि लखै उलूक ॥ 285 ॥

हरि रहीम ऐसी करी, ज्यों कमान सर पूर।
खैंचि अपनी ओर को, डारि दियो पुनि दूर ॥ 286 ॥

हरी हरी करुना करी, सुनो जो सब ना टेर।
जग डग भरी उतावरी, हरी करी की बेर ॥ 287 ॥

पाठान्तर—1 सो मती। 2. रज्जब।
3. सम्पति सपतिवान को, सपति बारो देत। सतत सपति जान कै।
4 घटो रहीम न। इसका एक पाठ इस प्रकार है—
ससि की सुखद सुचाँदनी, सुन्दर सबै सुहात।
लगी चोर चित क्यो लठी, घट रहीम मन कांति ॥
5. सुकेस के स्थान पर सकोच और मान के स्थान पर साजि।

हित रहीम इतऊ करै, जाकी जिती बिसात।
नहिं यह रहै न वह रहै, रहै कहन को बात[1] ॥ 288 ॥

होत कृपा जो बड़ेन की[2] सो कदाचि घटि जाय।
तौ रहीम मरिबो भलो, यह दुख सहो[3] न जाय ॥ 289 ॥

होय[4] न जाकी छाँह ढिग, फल रहीम अति दूर।
बढ़िहू[5] सो बिनु काज ही, जैसे तार खजूर[6] ॥ 290 ॥

सोरठा

ओछे को[7] सतसंग, रहिमन तजहु अँगार ज्यों।
तातो जारै अंग, सीरो[8] पै कारो लगै ॥ 291 ॥

रहिमन कीन्हीं प्रीति, साहब[9] को भावै नहीं।
जिनके अगनित मीत, हमैं गरीबन को गनै ॥ 292 ॥

रहिमन जग की रीति, मैं देख्यो रस ऊख में।
ताहू में परतीति, जहाँ गाँठ[10] तहँ रस नहीं ॥ 2·3 ॥

जाके सिर अस भार, सो कस झोंकत भार अस।
रहिमन उतरे पार, भार झोंकि सब भार में ॥ 294 ॥

पाठान्तर—1. इसका एक पाठ इस प्रकार है—
हित अनहित रहिमन करै, जाके जहाँ बिसात।
ना यह रहै न वह रहै, रहे कहन कहँ बात॥
2. के। 3. सह्यो। 4. छाँह तो वाकी कठिन है।
5. बाढेहु, बाढ़्यो।
6. कबीर का इसी भाव को व्यक्त करने वाला दोहा :
बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर।
पंथी को छाया नहीं, फल लागै अति दूर॥
(291) यह भाव अहमद ने यों कहा है—
अहमद तजै अँगार ज्यों, छोटे को सँग साथ।
सीरो कर कारो करै, तातो जारै हाथ॥
7. कर। 8. सीरे। 9. साहेब। 10. गाँठि।

रहिमन नीर पखान, बूड़ै[1] पै सीझै नहीं।
तैसे[2] मूरख ज्ञान, बूझै पै सूझै नहीं ॥ 295 ॥

रहिमन बहरी बाज, गगन चढ़ै फिर क्यों तिरै।
पेट अधम के काज, फेरि आय[3] बंधन परै ॥ 296 ॥

रहिमन मोहि[4] न सुहाय, अमी पिआवै[5] मान विनु[6]।
बरु[7] विष देय[8] बुलाय,[9] मान सहित मरिबो भलो ॥ 297 ॥

बिंदु मों[10] सिंधु समान को अचरज कासों कहै।
हेरनहार हेरान,[11] रहिमन अपुने[12] आप तें ॥ 298 ॥

चूल्हा दीन्हो बार, नात रह्यो सो जरि गयो।
रहिमन उतरे पार, भार झोंकि सब भार में ॥ 299 ॥

पाठान्तर—1. भीगै (भीजै)। 2. मीजै। 3. आइ। 4. मोहि। 5. पिआवत।
6. बिन। 7. जो। 8. दे। 9. बुलाइ। 10 मो, मे। 11. हिरान।
12. आपुहि।

रहीम का एक दोहा और मिलता है—

धर डर गुरु डर बंस डर, डर लज्जा डर मान।
डर जेहि के जिह मे बसै, तिन पाया रहिमान ॥ 300 ॥

किन्तु यह प्रक्षिप्त प्रतीत होता है। इसमें 'रहिमान' रहीम की छाप न होकर ईश्वर के अर्थ में आया है।

नगर शोभा

आदि रूप की परम दुति,[1] घट-घट रह्यो समाइ।
लघु मति ते मो मन रसन, अस्तुति कही न जाइ ॥ 1 ॥

नैन तृप्ति कछु होतु[2] है, निरखि जगत की भाँति।
जाहि ताहि में पाइयै,[3] आदि रूप की कांति ॥ 2 ॥

उत्तम जाती[4] ब्राह्मनी,[5] देखत चित्त लुभाय।
परम पाप पल में हरत, परसत वाके पाय[6] ॥ 3 ॥

परजापति परमेस्वरी,[7] गंगा रूप-समान।
जाके अंग-तरंग में, करत नैन अस्नान ॥ 4 ॥

रूप-रंग-रति-राज में, खतरानी इतरान।
मानों रची बिरंचि पचि, कुसुम कनक में सान ॥ 5 ॥

पारस पाहन की मनो, धरै पूतरी अंग।
क्यों न होइ कंचन बहू,[8] जो बिलसै तिहि संग ॥ 6 ॥

कबहुँ दिखावै जौहरिन,[9] हँसि हँसि मानिक लाल।
कबहूँ चख ते च्वै परै, टूटि मुकुत की माल ॥ 7 ॥

जद्यपि[10] नैननि ओट है, बिरह चोट बिन घाइ।
पिय उर पीरा ना करै, हीरा सी गड़ि जाइ ॥ 8 ॥

कँथिनि कथन न पारई, प्रेम-कथा मुख बैन[11]।
छाती ही पाती मनो, लिखै मैन की सैन ॥ 9 ॥

बरुनि-बार लेखनि करै, मसि काजरि भरि लेइ[12]।
प्रेमाखर[13] लिखि नैन ते, पिय बाँचन को देइ[14] ॥ 10 ॥

पाठान्तर—1. द्युति। 2. होत। 3. पाइयत। 4. जाति। 5. ब्राह्मणी, बराह्मनी। 6. पाइ। 7. परमेस्वरी। 8. बहू। 9. जौहरनि। 10. जद्दपि। 11. बैन। 12. लेय। 13. प्रेमाक्षर। 14. देय।

चतुर चितेरिन[1] चित हरै चख खंजन के भाइ।
द्वै आधो करि डारई, आधो मुख दिखराइ॥ 11॥

पलक न टारै वदन तें, पलक न मारै मित्र।
नेकु[2] न चित तें उतरै, ज्यों कागद में चित्र॥ 12॥

सुरंग बरन बरइन बनी, नैन खवाये पान।
निसि दिन फेरै[3] पान ज्यों, बिरही जन के प्रान॥ 13॥

पानी पीरी अति बनी, चन्दन खोरे गात।
परसत बीरो अधर को, पीरी कै ह्वै जात॥ 14॥

परम रूप कंचन बरन, सोभित नारि सुनारि।
मानो साँचे ढारि कै, बिधिना गढ़ी सुनारि॥ 15॥

रहसनि बहसनि मन हरै, घेरि घेरि[4] तन लेहि।
औरन को चित चोरि कै, आपुन चित्त न देहि॥ 16॥

बनिआइन[5] बनि आइ कै, बैठि रूप की हाट।
पेम पेक तन हेरि कै, गरुए[6] टारत[7] बाट॥ 17॥

गरब तराजू करत चख, भौंह मोरि मुसक्यात।
डाँडी मारत बिरह की, चित चिन्ता घटि जात॥ 18॥

रँगरेजिन[8] के संग में, उठत अनंग तरंग।
आनन ऊपर पाइयतु, सुरत अंत के रंग॥ 19॥

मारति नैन कुरंग तें, मो मन मार मरोरि[9]।
आपुन अधर सुरंग तें, कामिहि काढ़ति बोरि[10]॥ 20॥

पाठान्तर—1. चितेरनि। 2. नेक। 3 फेरे। 4. घोर घोर। 5. बनियाइन।
6 गरुवे। 6. तारत। 8. रंगरेजनि। 9. मरोर। 10. बोर।

गति गरूर गजराज जिमि, गोरे बरन गँवारि[1]।
जाके परसत पाइयै, धनवा की उनहारि[2] ॥ 21 ॥

घरो भरो धरि सीस पर, बिरही देखि लजाइ।
कूक कंठ तै बाँधि कै, लेजू ज्यों लै जाइ ॥ 22 ॥

भाटा[3] बरन सुकौंजरी,[4] बेचै सोवा साग।
निलजु भई खेलत सदा, गारी दै दै फाग ॥ 23 ॥

हरी भरी डलिया निरखि, जो कोई नियरात[5]।
झूठे हू गारी सुनत, साँचेहू ललचात ॥ 24 ॥

बनजारी झुमकत चलत, जेहरि पहिरै पाइ।
वाके जेहरि के सबद, बिरही जिय हर जाइ ॥ 25 ॥

और बनज ब्योपार को, भाव बिचारै कौन।
लोइन लोने होत हैं, देखत वाको लौन ॥ 26 ॥

बर बाँके माटी भरे, कौरी बैस कुम्हारि[6]।
द्वै उलटे सरवा मनौ, दीसत कुच उनहारि[7] ॥ 27 ॥

निरखि प्रान घट ज्यों रहै, क्यों मुख आवे बाक।
उर मानौं आबाद है, चित्त भ्रमै[8] जिमि चाक ॥ 28 ॥

बिरह अगिन[9] निसि दिन धवै, उठै चित्त चिनगारि[10]।
बिरही जियहिं जराइ कै, करत लुहारि लुहारि[11] ॥ 29 ॥

राखत मो मन लोह-सम, पारि[12] प्रेम घन टोरि[13]।
बिरह अगिन में ताइकै, नैन नीर में बोरि[14] ॥ 30 ॥

पाठान्तर— 1. गँवार। 2. उनहार। 3. भाँटा। 4. काजरी। 13. नियराति।
6. कुम्हार। 7. उनहार। 8. भ्रमै। 9. अगिनि। 10. चिनगार।
11. लुहार-लुहार। 12. पार। 13. टोर। 14. बोर।

कलदारी रस प्रेम कों, नैनन[1] भरि भरि[2] लेति।
जोबन मद मातो फिरै, छातो छुवन न देति॥ 31॥

नैनन प्याला फेरि कै, अधर गजक जब देइ।
मतवारे की मत हरै, जो चाहै सो लेइ॥ 32॥

परम ऊजरी गूजरी, दह्यो सीस पै लेइ।
गोरस के मिस[3] डोलही, सो रस नेकु[4] न देइ॥ 33॥

गाहक सो हँसि बिहँसि कै, करति बोल अरु कौल।
पहिले आपुन मोल कहि, कहति[5] दही को मोल॥ 34॥

काछिनि कछू न जानई, नैन बीच हित चित्त।
जोबन जल सींचति[6] रहै, काम कियारी नित्त॥ 35॥

कुच भाटा, गाजर अधर, मूरा से भुज भाइ।
बैठी लौका बेचई, लेटी खीरा खाइ॥ 36॥

हाथ लिये हत्या फिरै, जोबन गरब हुलास।
धरै कसाइन रैन दिन बिरही रकत पियास[7]॥ 37॥

नैन कतरनी साजि कै, पलक सैन जब देइ।
बरुनी की टेढ़ी छुरी, लेह छुरी सो टेइ॥ 38॥

हियरा भरै तबाखिनी, हाथ न लावन देत।
सुरवा नेक चखाइ कै, हड़ी झारि सब देत॥ 39॥

अधर सुधर चख चीकनै, दूभर हैं सब गात[8]।
वाको परसो खात हूँ,[9] बिरहो नहिं न अघात॥ 40॥

बेलन तिली सुवासि कै, तेलिन करै फुलैल।
बिरही दृष्टि फिरी करै, ज्यों तेली को बैल॥ 41॥

पाठान्तर—1. नैननि। 2. भर भर। 3. मिमि। 4 नेक। 5. कहत। 6 सींचत। 7. पियाम। 8. पाठ यों था—अधर सुघर चख चोकने, वे भर हैं तन गात। 9. हो।

कबहूँ मुख रूखौ किये, कहै जीय की बात।
वाको करुआ बचन सुनि, मुख मीठो ह्वै जात ॥ 42 ॥

पाटम्बर पटइन पहिरि,[1] सेंदुर भरे ललाट।
बिरही नेकु न छांड़ही, वा पटवा की हाट ॥ 43 ॥

रस रेसम बेंचत रहै, नैन सैन की सात।
फूंदी पर को फोंदना, करै कोटि जिय घात ॥ 44 ॥

भटियारी अरु लच्छमी, दोऊ एकै घात।
आवत बहु आदर करै, जात न पूछै बात ॥ 45 ॥

भटियारी उर मुँह करै, प्रेम-पथिक के[2] ठौर।
द्यौस दिखावै और को, रात दिखावै और ॥ 46 ॥

करै गुमान कमांगरी,[3] भौंह कमान चढ़ाइ।
पिय कर गहि जब खेंचई, फिरि कमान सी जाइ ॥ 47 ॥

जोगति है पिय रस परस, रहै रोस जिय टेक।
सूधी करत कमान ज्यों, बिरह-अगिन में सेंक ॥ 48 ॥

हँसि हँसि मारै नैन-सर, बारत जिय बहु पीर।
बेझा ह्वै उर जात है, तीरगरिन के तीर ॥ 49 ॥

प्रान सरीकन साल दै, हेरि फेरि कर लेत।
दुख संकट पै काढ़ि के, सुख सरेस में देत ॥ 50 ॥

छीपिन छापो अधर को, सुरँग पीक भरि लेइ।
हँसि हँसि काम कलोल में, पिय मुख ऊपर देइ ॥ 51 ॥

मानों मूरति मैन की, धरै रंग सुरतंग।
नैन रँगीले होतु हैं, देखत वाको रंग ॥ 52 ॥

पाठान्तर—1. पहर। 2. को। 3. कमागरी।

सकल अंग सिकलीगरिन, करत प्रेम औसेर।
करै बदन दर्पन मनों, नैन मुसकिला[1] फेरि ॥ 53 ॥

अंजन चख, चंदन वदन, सोभित सेंदुर मंग।
अंगनि रंग सुरंग कै, काढ़ै अंग अनंग ॥ 54 ॥

करै न काहू की सँका, सक्किन जोवन रूप।
सदा सरम जल तें भरी, रहै चिवुक को[2] कूप ॥ 55 ॥

सजल नैन वाके निरखि, चलत प्रेम रस[3] फूटि[4]।
लोक लाज डर धाकते, जात मसक सी छूटि[5] ॥ 56 ॥

सुरँग बसन तन गाँधिनी, देखत दृग न अघाय।
कुच माजू, कुटली अधर, मोचत चरन न आय ॥ 57 ॥

कामेस्वर नैननि धरै, करत प्रेम की केलि।
नैन माँहि चोवा भरे, चिहुरन[6] माँहि फुलेल ॥ 58 ॥

राज करत रजपूतनी,[7] देस रूप की दीप।
कर घूंघट पट ओट कै, आवत पियहि समीप ॥ 59 ॥

सोभित मुख ऊपर धरै, सदा सुरत मैदान।
छूटी लटैं बँदूकची, भौहें रूप कमान ॥ 60 ॥

चतुर चपल कोमल विमल, पग परसत सतराइ।
रस ही रस बस कीजियै, तुरकिन तरकि न जाइ ॥ 61 ॥

सीस चूँदरी निरखि मन, परत प्रेम के जार।
प्रान इजारो[8] लेत है, वाको[9] लाल इजार ॥ 62 ॥

जोगिन जोग न जानई, परै प्रेम रस माँहि।
डोलत मुख ऊपर लिये, प्रेम जटा की छाँहि ॥ 63 ॥

पाठान्तर—1. मुसक्ला। 2. कै। 3. सर। 4. फूट। 5. छूट। 6. छोरन। 7. रजपूतई। 8. इजारे। 9. वाकी।

मुख पै बैरागी अलक, कुच सिंगी बिष बैन।
मुदरा धारै अधर कै, मूँदि ध्यान सो नैन ॥ 64 ॥

भाटिन भटकी प्रेम की, हटकी रहै न गेह।
जोवन पर लटकी फिरै, जोरत तरकि[1] सनेह ॥ 65 ॥

मुक्त माल उर दोहरा, चौपाई मुख-लौन।
आपुन जोवन रूप की, अस्तुति करै न कौन ॥ 66 ॥

लेत चुराये डोमनी, मोहन रूप सुजान।
गाइ गाइ कछु लेत है, बाँकी तिरछी तान ॥ 67 ॥

नैकु न सूधे मुख रहै, झुकि हँसि मुरि मुसक्याइ।
उपपति की सुन जात है, सरबस लेइ रिझाइ ॥ 68 ॥

चेरी माती[2] मैन की, नैन सैन के भाइ।
संक भरी जँभुवाइ कै, भुज उठाइ[3] अँगराइ ॥ 69 ॥

रंग रंग राती फिरै, चित्त न लावै गेह।
सब काहू तें कहि फिरै, आपुन सुरत सनेह ॥ 70 ॥

बाँस चढ़ी नट-नंदनी, मन बाँधत लै बाँस।
नैन मैन की सैन तें, कटत कटाछन साँस ॥ 71 ॥

अलबेली अद्भुत कला, सुध बुध लै बरजार।
चोरि चोरि[4] मन लेत है, ठौर ठौर तन तोर ॥ 72 ॥

बोलनि[5] पै पिय मन विमल, चितवनि[6] चित्त समाय।
निसि बासर हिंदू तुरक,[7] कौतुक देखि लुभाय ॥ 73 ॥

लटकि लेइ कर दाइरौ, गावत अपनी ढाल।
सेत लाल छवि दोसियतु, ज्यों गुलाल की माल ॥ 74 ॥

पाठान्तर—1. तरक। 2. माँती। 3. उठाय। 4. चोर-चोर। 5 बोलन। 6. चितवनि। 7. तुरकि।

कंचन से तन कंचनी, स्याम कंचुकी अंग।
भाना भामं भोरहो, रहै घटा के संग॥ 75॥

नैननि भीतर नृत्य कै,[1] सैन देत सतराय।
छबि तै चित्त छुड़ावही, नट के भाय[2] दिखाय॥ 76॥

हरि गुन आवज केसवा, हिंसा बाजत काम।
प्रथम विभासै गाइके, करत जीत संग्राम॥ 77॥

प्रेम अहेरी साजि कै, बाँधि पर्‍यो रस तान।
मन मृग ज्यों रीझै नहीं, तोहि नैन के बान॥ 78॥

मिलत अंग सब अंगना,[3] प्रथम माँगि मन लेइ।
घेरि घेरि[4] उर राख ही, फेरि फेरि[5] उर[6] देइ॥ 79॥

बहु पतंग जारत रहै, दीपक बारै देह।
फिर तन-गेह न आवही, मन जु चैंटुवा लेह॥ 80॥

प्रान-पूतरी पातुरी,[7] पातुर कला निधान।
सुरत अंग चित चोरई, काय पाँच रसबान[8]॥ 81॥

उपजावै रस में बिरस, बिरस माहिं रस नेम।
जो कीजै बिपरीत रति, अतिहि बढावत[9] प्रेम॥ 82॥

कहै आन की आन कछु, बिरह पीर तन ताप।
औरै गाइ सुनावई, औरै कछू अलाप॥ 83॥

जुँकिहारो जोबन लये,[10] हाथ फिरै रस देत।
आपुन मास चखाइ कै, रकत आन को लेत॥ 84॥

बिरही के उर में गड़ै, स्याम अलक की नोक।
बिरह पीर पर लावई, रकत पियासी जोंक॥ 85॥

पाठान्तर—1. के। 2. भाइ। 3. मीयना। 4. घेर-घेर। 5. फेर-फेर। 6. महि।
7. पातरी। 8. बाज। 9. बढ़ावै। 10. लिए।

बिरह बिथा खटकिन कहै, पलक न लावै रैन।
करत कोप बहु भाँति ही, धाइ मैंन की सैन॥ 86॥

बिरह बिथा कोई कहै, समुझै कछू न ताहि।
वाके जोवन रूप की, अकथ कथा कछु आहि॥ 87॥

जाहि ताहि के उर गड़ै, कुदिन बसन मलीन।
निस दिन वाके जाल में, परत फँसत मन मीन॥ 88॥

जा वाके अँग संग में, धरै प्रीत की आस।
वाको लागै महमही,[1] बसन बसेधी बास॥ 89॥

सबै अंग सबनोगरनि, दीसत मन न कलंक।
सेत बसन कीने मनो, साबुन लाइ मतंग॥ 90॥

बिरह बिथा मन की हरै, महा बिमल ह्वै जाइ।
मन मलीन जो धोवई, वाको साबुन लाइ॥ 91॥

थोरे थोरे कुच उठी, थोपिन की उर सीव।
रूप नगर में देत है, मैन मँदिर की नीव॥ 92॥

करत बदन सुख सदन पै, घूँघट नितरन छाँह।
मैननि मूँदे पग धरै, भौंहन[2] आरै माँह॥ 93॥

कुन्दन सी कुन्दीगरिन, कामिनि कठिन कठोर।
और न काहू की सुनै, अपने पिय के सोर॥ 94॥

पगहि मोगरी सो रहै, पंम वज्र बहु खाइ।
रँग रँग अंग अनंग के, करै बनाइ बनाइ॥ 95॥

धुनियाइन धुनि रैन दिन, धरै सुरति की भाँति।
वाको राग न बूझही, कहा बजावै ताँति॥ 96॥

पाठान्तर—1. महिमही। 2. भृहन।

काम पराक्रम जब करैं, छुवत नरम हो जाइ।
रोम रोम पिय के बदन, रूई सी लपटाइ॥ 97॥

कोरिन कूर न जानई, पेम नेम के भाइ।
बिरही वाके भौन में, ताना तनत बजाइ[1]॥ 98॥

बिरह भार पहुँचे नही, तानी बहे न पेम।
जोबन पानी मुख धरैं, खँचे पिय के नैन॥ 99॥

जोबन युत[2] पिय दबगरिन, कहत पीय के पास।
मो मन ओर न भावई, छाँडि तिहारी बास॥ 100॥

भरी कुपी कुच पीन की, कंचुक में न समाइ।
नव सनेह असनेह भरि, नैन कुपा ढरि जाइ॥ 101॥

घेरत नगर नगारचिन, बदन रूप तन साजि।
घर घर वाके रूप को, रह्यो नगारा[3] बाजि॥ 102॥

पहनें जो बिछुवा खरी, पित के संग अँगरात।
रतिपति की नौबत मनो, बाजत आधी रात॥ 103॥

मन दलमले दलालिनी, रूप अंग के भाइ।
नैन मटकि मुख की चटकि, गाहक रूप दिखाइ॥ 104॥

लोक लाज कुलकानि तें, नही सुनावति[4] बोल।
नैननि सैननि में करै, बिरही जन को मोल॥ 105॥

निसि दिन रहै ठठेरिनी, साजे माजे गात।
मुकता वाके रूप को, थारी पै ठहरात॥ 106॥

आभूषण बसतर पहिरि, चितवति पिय मुख ओर।
मानो गढ़े नितंब कुच, गडुवा ढार कठोर॥ 107॥

पाठान्तर—1. भजाइ। 2. दुति। 3. नगारो। 4. सुनावत।

कागद से तन कामदिन, रहै प्रेम के पाइ।
रीझी भीजी मैंन जल, कागद सी सियलाइ॥ 108॥

मानों कागद की गुड़ी, चढ़ी सु प्रेम अकास।
सुरत दूर चित खेंचई, आइ रहै उर पास॥ 109॥

देखन के मिस मसिकरिनि, पुनि भर मसि खिन देत।
चख टौना कछु डारई, सूझे स्याम न सेत॥ 110॥

रूप जोति मुख पै धरैं, छिनक मलीन न होत।
कच मानो काजर परं, मुख दीपक की जोति॥ 111॥

वाजदारिनी वाज पिय, करै नहीं तन साज।
विरह पीर तन यों रहै, जर झंकिनी जिमि वाज॥ 112॥

नैंन अहेरी साजि कैं, चित पंछी गहि लेत।
विरही प्रान सचान[1] को, अधर न चाखन देत॥ 113॥

जिलेदारिनी अति जलद, विरह अगिन के तेज।
नाक न मोरैं सेज पर, अति हाजर महिमेज॥ 114॥

औरन को घर सघन मन, चलैं जु घूँघट माँह।
वाके रंग सुरंग को, जिलेदार पर छाँह॥ 115॥

सोभा अंग भंगेरिनी, सोभित भाल गुलाल।
पता पीसि पानी करै, चखन दिखावै लाल॥ 116॥

काहू अधर सुरंग धरि, प्रेम पियालो देत।
काहू की गति मति सुरत, हरुवैई हरि लेत॥ 117॥

बाजीगरिन बजार में, खेलत बाजी प्रेम।
देखत वाको रस रसन, तजत नैंन व्रत नेम॥ 118॥

पीवत वाको प्रेम रस, जोई सो बस होइ।
एक खरे घूमत रहै, एक परे मत खोइ॥ 119॥

पाठान्तर—1. सिचान।

चीतावानी देखि कै, बिरही रहे लुभाय।
गाड़ी को चीतो मनो, चलै न अपने पाय॥ 120 ॥

अपनी वैसि गरूर तें, गिनै न काहू मित्त।
लाँक दिखावत ही हरै, चीता [redacted] को चित्त॥ 121 ॥

कठिहारी उर की कठिन, काठ पूतरी आहि।
छिनक जु पिय सँग ते टरै, बिरह फँदै नहिं ताहि॥ 122 ॥

करै न काहू को कह्यो, रहे दियें हिय साथ।
बिरही को कोमल हियो, क्यों न होइ जिम काठ॥ 123 ॥

घासिन थोरे दिनन की, बैठी जोबन त्यागि।
थोरे ही बुझि जात है, घास जराई आग॥ 124 ॥

तन पर काहू ना गिनै, अपने पिय के हेत।
हरबर बेड़ो बैस को, थोरे ही को देत॥ 125 ॥

रीझी रहे डफालिनी, अपने पिय के राग।
ना जानै संजोग रस, ना जानै बैराग॥ 126 ॥

अनमिल बतियाँ सब करै, नाही मलिन सनेह।
डफली बाजै बिरह की, निसि दिन वाके गेह॥ 127 ॥

बिरही के उर में गड़ै,[1] गड़िवारिन को नेह।
शिव-वाहन सेवा करै, पावै सिद्धि सनेह॥ 128 ॥

पैम पीर वाकी जनी, कटकहू नगड़ाइ।
गाडी पर बैठे नहीं, नैननि सो गड़ि जाइ॥ 129 ॥

बैठी महत महावतिन, धरै जु आपुन अंग।
जोबन मद में गलि चढ़ी, फिरै जु पिय के संग॥ 130 ॥

पीत काँछि कंचुक तनहि,[2] बाला गहे कलाव।
जाहि ताहि मारत फिरै, अपने पिय के ताव॥ 131 ॥

पाठान्तर—1. गड़ै। 2. नियन।

सरवानी बिपरीत रस, किय चाहै न डराइ।
दुर न बिरही को दुर्यो, ऊंट न छाग समाय ॥ 132 ॥

जाहि ताहि को चित हरै, बांधे प्रेम कटार।
चित आवत गहि खेंचई, भरि कै गहै मुहार ॥ 133 ॥

मालबंदिनी रैन दिन, रहै सखिन के नाथ।
जोबन अग तुरंग को, बाँधन देइ न नाथ ॥ 134 ॥

चोली माँहि चुरावई, चिरवादारिनि चित्त।
फेरत वाके गात पर, काम खरहरा नित्त ॥ 135 ॥

सारो निसि पिय संग रहै, प्रेम अग आधीन।
मठो माँहि दिखावही, बिरही को कटि खीन ॥ 136 ॥

धाविन लुबधी प्रेम की, ना घर रहै न घाट।
देत फिरै घर घर बगर, लुगरा धरै लिलार ॥ 137 ॥

सुरत अंग मुख मोरि कै, राखै अधर मरोरि।
चित्त गवहरा ना हरै, बिन देखे वा ओर ॥ 138 ॥

चोरति चित्त चमारिनी, रूप रंग के साज।
लेत चलायें चाम के, दिन द्वै जोबन राज ॥ 139 ॥

जावै क्यों नहिं नेम सब, होइ लाज कुल हानि।
जो वाके संग पौढई, प्रेम अघोरी जानि ॥ 140 ॥

हरी भरी गुन चूहरी, देखत जीव कलक।
याके अधर कपोल को, चुवौ परै जिम रंग ॥ 141 ॥

परमलता सी लहलही, धरै पेम संयोग।
कर गहि गरै लगाइयै, हरै विरह को रोग ॥ 142 ॥

बरवै-नायिका-भेद

[दोहा]

कवित कह्यो दोहा कह्यो, तुलै न छप्पय छंद।
बिरच्यो यहै बिचार कै, यह बरवै[1] रस कंद[2] ॥ 1 ॥

[मंगलाचरण]

बंदौं देवि सरदवा, पद कर जोरि।
बरनत काव्य बरैवा, लगै न खोरि ॥ 2 ॥

[उत्तमा]

लखि अपराध पियरवा, नहिं रिस कीन।
बिहँसत चनन[3] चउकिया, बैठक दीन ॥ 3 ॥

[मध्यमा]

बिनु गुन पिय-उर हरवा, उपट्यो[4] हेरि।
चुप ह्वै चित्र पुतरिया, रहि मुख फेरि ॥ 4 ॥

[अधमा]

बैरिहि बैर गुमनवा, जनि करु नारि।
मानिक औ गजमुकुता,[5] जौ लगि बारि ॥ 5 ॥

[स्वकीया]

रहत नयन के कोरवा, चितवनि छाय।
चलत[6] न पग-पैंजनियाँ, मग अहटाय[7] ॥ 6 ॥

[मुग्धा]

लहरत लहर लहरिया, लहर बहार।
मोतिन जरी किनरिया, बिथुरे बार ॥ 7 ॥

पाठान्तर—1. बरवा। 2. छंद। 3. चंदन। 4. उपटेउ। 5. मानुष औ गज मोतियाँ। 6. बजत। 7. ठहराय।

लागे[1] बान नवेलियहि, मनसिज बान।
उकसन लाग[2] उरोजवा[3] दृग तिरछान ॥ 8 ॥

[अज्ञातयौवना]

कवन[4] रोग दुहुँ[5] छतिया, उपजे[6] आय।
दुखि दुखि उठै करेजवा, लगि जनु जाय[7] ॥ 9 ॥

[ज्ञातयौवना]

औचक आइ जोवनवाँ, मोहि दुख दीन।
छूटिगो संग गोइअवाँ नहिं भल कीन ॥ 10 ॥

[नवोढ़ा]

पहिरति[8] चूनि चुनरिया, भूषन भाव।
नैननि देत कजरवा, फूलनि चाव ॥ 11 ॥

[विश्रब्ध नवोढ़ा]

जघन जोरत गोरिया, करत कठोर।
छुअन न पावै[9] पियवा, कहुँ कुच-कोर ॥ 12 ॥

[मध्यमा]

ढीलि आँख जल अँचवत, तरुनि सुभाय।
धरि खसिकाइ घइलना, मुरि मुसुकाय[10] ॥ 13 ॥

[प्रौढ़ रतिप्रीता]

भोरहि बोलि कोइलिया, बढवति ताप।
घरी एक घरि अलवा,[11] रहु चुपचाप ॥ 14 ॥

[परकीया]

सुनि सुनि[12] कान मुरलिया, रागन भेद।
गैल न छाँड़त[13] गोरिया, गनत[14] न खेद ॥ 15 ॥

पाठान्तर—1. लागेउ। 2. लागु। 3. करेजवा, उकजवा। 4. कौन। 5. है, हुई। 6 उरस्यो। 7 लाय। 8. पहिरत। 9. पाव।

10. निसि दिन चाहत चाहन, यौ ब्रजराज।
लाज जोरावरि है बसि, करत अकाज ॥

11. घरी एक धरि अलिया, धरि घरि एक घरिअवा,
घरी एक भरि अँसिया।

12. धुनि। 13. छाँड़ति। 14. गनति।

[ऊढ़ा]

निसु दिन सासु ननदिया, मुहि घर हेर[1]।
सुनन न देत मुरलिया मधुरी[2] टेर॥ 16॥

[अनूढ़ा]

मोहि बर जोग कन्हैया लागौं पाय।
तुहु कुल पूज देवतवा,[3] होहु सहाय॥ 17॥

[भूत सुरति-संगोपना]

चूनत फूल गुलबवा डार कटील।
टुटिगा बंद अंगियवा, फटि पट नील॥ 18॥

आयेसि कवनेउ ओरवा[4], सुगना सार।
परिगा दाग अधरवा, चोंच चोटार॥ 19॥

[वर्तमान सुरति-गोपना]

मैं पठयेउ जिहि कमवाँ, आयेस साध।
छुटिगा सीस को जुरवा, कसि के बाँध॥ 20॥

मुहि तुहि हरबर आवत, भा पथ खेद।
रहि रहि लेत उससवा, बहत प्रसेद॥ 21॥

[भविष्य सुरति-गोपना]

होइ कत आइ बदरिया, बरखहि पाथ।
जैहौं घन अमरैया, सुगना[5] साथ॥ 22॥

जैहौं चुनन कुसुमियाँ, खेत बड़ि दूर।
नौआ[6] केर छोहरिया, मुहि सँग कूर॥ 23॥

[क्रिया-विदग्धा]

बाहिर लैके दियवा, बारन जाय।
सासु ननद ढिग पहुँचत, देत बुझाय[7]॥ 24॥

पाठान्तर— 1. घेर मोहि घर घेर। 2. नाघुन। 3 तुमको पुज देवतवा, तुमको पुजऊँ। 4. अब नहिं तोहिं पढावों। 5 संग न। 6. तोरेसि। 7. देति।

[वचन-विदग्धा]

तनिक सी[1] नाक नथुनिया, मित हित नीक।
कहति नाक पहिरावहु, चित दै सीक ॥ 25 ॥

[लक्षिता]

आजु नैन के कजरा,[2] औरे भांत।
नागर नेह नवेलिया, सुदिने[3] जात ॥ 26 ॥

[अन्य-सुरति-दु:खिता]

बालम अस मन मिलियउँ, जस पय पानि।
हंसिनि भइल सवतिया, लइ बिलगानि ॥ 27 ॥

[संभोग-दु:खिता]

मैं पठयउ जिहि कमवां, आयसि साध।
छुटिगो सीस को जुरवा, कसि के बाँधि ॥ 28 ॥

मुहि तुहि हरवत आवत, भव पथ खेद।
रहि रहि लेत उससवा, बहत प्रसेद ॥ 29 ॥

[प्रेम-गर्विता]

आपुहि देत जवकवा,[4] गूंदत हार।
चुनि पहिराव चुनरिया, प्रानअधार ॥ 30 ॥

अवरन पाय जवकवा, नाइन दीन।
मुंहि पग आगर गोरिया, आनन कीन[5] ॥ 31 ॥

[रूप-गर्विता]

खीन मलिन बिखभैया, औगुन तीन।
मोहिं कहत बिधुबदनी, पिय मतिहीन[6] ॥ 32 ॥

दातुल भयसि सुगरुवा,[7] निरस पखान।
यह मधु भरल अधरवा, करसि गुमान ॥ 33 ॥

पाठान्तर—1. घोरेसि। 2. कोरवा। 3. मूंदि न। 4 जवरवा। 5. तुम्हें अगोरत गोरिया, न्हान न कीन। 6. पिय कह चंद बदनिया, हियमनि हीन। 7. रातुल भयेसि मुंगउवा।

[प्रथम अनुशयना, भावी-संकेतनष्टा]

धीरज धरु किन गोरिया, करि अनुराग।
जात जहां पिय देसवा, घन[1] बन[2] बाग॥ 34॥

जनि मरु रोय दुलहिया, कर मन ऊन।
सघन कुंज ससुररिया, औ घर सून॥ 35॥

[द्वितीय अनुशयना संकेत-विघट्टना]

जमुना तीर तरुनिअहि[3] लखि भो सूल।
झरिगो रूख बेइलिया, फुलत न फूल॥ 36॥

ग्रीषम दवत दवरिया, कुंज कुटीर।
तिमि तिमि तकत तरुनिअहि, बाढ़ी पीर[4]॥ 37॥

[तृतीय अनुशयना, रमणगमना]

मितवा करत बँसुरिया, सुमन सपात।
फिरि फिरि तकत तरुनिया, मन पछतात॥ 38॥

मित उत तें फिरि आयेउ, देखु न राम।
मैं न गई अमरैया, लहेउ न काम॥ 39॥

[मुदिता]

नेवते गइल ननदिया, मैके सासु।
दुलहिनि तोरि खबरिया, आवै आँसु॥ 40॥

जैहौं काल नेवतवा, भा[5] दुःख दून।
गाँव करेसि रखवरिया, सब घर सून॥ 41॥

[कुलटा]

जस मद मातल हथिया, हुमकत जात[6]।
चितवत जात तरुनिया, मन मुसकात[7]॥ 42॥

पाठान्तर—1. घन। 2. वर। 3. तरुनिया। 4. पीत। 5 भव। 6. जाय।
7. मुदु मुसकाय।

चितवत ऊँच अटरिया, दहिने बाम।
लाखन लखत बिछियवा, लखी[1] सकाम ॥ 43 ॥

[सामान्या गणिका]

लखि लखि धनिक नयकवा,[2] बनवत भेप।
रहि गइ हेरि अरसिया, कजरा रेख[3] ॥ 44 ॥

[मुग्धा प्रोषितपतिका]

कासो कहौ सँदेसवा, पिय परदेसु।
लागेहु चइत[4] न फूले, तेहि बन[5] टेसु ॥ 45 ॥

[मध्या प्रोषितपतिका]

का तुम जुगुल तिरियवा, झगरति आय[6]।
पिय बिन मनहुँ अटरिया,[7] मुहि न सुहाय[8] ॥ 46 ॥

[प्रौढ़ा प्रोषितपतिका]

तै अब जासि[9] बेइलिया, बरु[10] जरि मूल।
बिनु पिय सूल करेजवा, लखि तुअ फूल ॥ 47 ॥

या झर मे घर घर में, मदन हिलोर।
पिय नहिं अपने कर में, करमे खोर ॥ 48 ॥

[मुग्धा खंडिता]

सखि सिख मान[11] नवेलिया, कीन्हेसि मान।
पिय बिन[12] कोपभवनवा, ठानेसि ठान ॥ 49 ॥

सीस नवाय नवेलिया, निचवइ जोय।
छिति खनि[13] छोर छिगुरिया, सुसुकति रोय[14] ॥ 50 ॥

पाठान्तर—1. लखत बिदेसिया हूँ। 2. धनिअवा। 3. नेख। 4. रातुन हूँ। 5 उहि बिन। 6 मजु मलतिया झलरनि जाय। 7. हुकरंया। 8. सुहाति, मोहाय। 9. जाइ। 10. बरि। 11. सीखि। 12. लसि। 13. खनि। 14. रोइ।

[मध्या खंडिता]

गिरि गइ पीय पगरिया,[1] आलस पाइ।
पवढ़्हु जाइ वरोठवा, सेज डसाइ ॥ 51 ॥

पोछहु अधर[2] कजरवा, जावक भाल।
उपजेउ[3] पीतम छतिया, विनु गुन माल ॥ 52 ॥

[प्रौढ़ा खंडिता]

पिय आवत अँगनैया, उठि कै लीन।
साथे[4] चतुर तिरियवा, बैठक दीन ॥ 53 ॥

पवढ़हु पीय पलँगिया, मीजहुँ पाय।
रैनि जगे कर निंदिया, सब मिटि जाय ॥ 54 ॥

[परकीया खंडिता]

जेहि लगि सजन सनेहिया,[5] छुटि घर बार।
आपन हित परिवरवा,[6] सोच परार ॥ 55 ॥

[गणिका खंडिता]

मितवा ओठ कजरवा, जावक भाल।
लियेसि काढ़ि बइरिनिया,[7] तकि मनिमाल ॥ 56 ॥

[मुग्धा कलहांतरिता]

आयेहु अबहिं गवनवा, जुरुते मान।
अब रस लागिहि[8] गोरिअहि, मन पछतान ॥ 57 ॥

[मध्या कलहांतरिता]

मैं मतिमंद तिरियवा, परिलिउँ भोर।
तेहि नहिं कंत मनउलेउँ,[9] तेहि कछु खोर ॥ 58 ॥

पाठान्तर—1. ठकि गो पीय पलँगिआ। 2. अनख। 3. उपट्यो। 4. बिहँसत।
5. सनेहया। 6. अपने हित पियरवा। 7. बरिइनियाँ। 8. लागा।
9. मनवसेउ।

[प्रौढ़ा कलहांतरिता]

थकि गा करि मनुहरिया,[1] फिरि गा[2] पीय।
मैं उठि[3] तुरति न लागेउं, हिमकर होय॥ 59॥

[परकीया कलहांतरिता]

जेहि लगि कौन विरोधवा, ननद जिठानि।
रखिउँ न लाइ[4] करेजवा, तेहि हित जानि॥ 60॥

[गणिका कलहांतरिता]

जिहि दीन्हेउ बहु बिरिया, मुहि मनिमाल।
तिहि ते रूठेउँ सखिया, फिरि गे[5] लाल॥ 61॥

[मुग्धा विप्रलब्धा]

लखे[6] न कंत सहेटवा, फिरि दुबराय[7]।
धनिया कमलवदनिया, गइ कुम्हिलाय॥ 62॥

[मध्या विप्रलब्धा]

देखि न केलि-भवनवा, नंदकुमार।
लै लै ऊँच[8] उससवा, भइ बिकरार॥ 63॥

[प्रौढ़ा विप्रलब्धा [

देखि न कंत सहेटवा, भा[9] दुख पूर।
भौ तन नैन कजरवा, होय[10] गा[11] झूर॥ 64॥

[परकीया विप्रलब्धा]

वैरिन भा[12] अभिसरवा, अति दुख दानि।
प्रातइ[13] मिलेउ न मितवा, भइ पछितानि[14]॥ 65॥

[गणिका विप्रलब्धा]

करिकै सोरह सिंगरवा, अतर लगाइ[15]।
मिलेउ न लाल सहेटवा, फिरि पछिताइ[16]॥ 66॥

पाठान्तर—1. मन का हरिया, मनहरिया 2. गौ। 3. सठि। 4. ? लाय। 5. गए। 6 मिलेउ। 7. नलेउ हेराइ। 8. ऊंचे। 9. भो। 10. मैं, ह्वैं। 11. गे। 12. भो, भइँ। 13. तापर। 14. पछतानि। 15. लगाय। 16. पछिताइ।

[मुग्धा उत्कंठिता]

भा[1] जुग जाम जमिनिया, पिय नहिं आय।
राखेउ कवन सवतिया, रहि बिलमाय ॥ 67 ॥

[मध्या उत्कंठिता]

जोहत तीय अँगनवा,[2] पिय की बाट।
बेचेउ चतुर तिरियवा, केहि के हाट ॥ 68 ॥

[प्रौढ़ा उत्कंठिता]

पिय पथ हेरत गोरिया, भा[3] भिनसार[4]।
चलहु न करिहि तिरियवा, तुअ[5] दरबार ॥ 69 ॥

[परकीया उत्कंठिता]

उठि उठि जात खिरिकिया, जोहत[6] बाट।
कतहुँ न आवत मितवा, सुनि सुनि[7] खाट ॥ 70 ॥

[गणिका उत्कंठिता]

कठिन नींद भिनुसरवा, आलस पाइ[8]।
धन दै मूरख मितवा, रहल लोभाइ[9] ॥ 71 ॥

[मुग्धा वासकसज्जा]

हरुए गवन नवेलिया, दीठि बचाइ।
पौढ़ी जाइ पलँगिया, सेज बिछाइ ॥ 72 ॥

[मध्या वासकसज्जा]

सुभग[10] बिछाइ पलँगिया, अंग सिंगार।
चितवत[11] चौंकि तरुनिया, दै दृग द्वार[12] ॥ 73 ॥

[प्रौढ़ा वासकसज्जा]

हँसि हँसि[13] हेरि अरसिया, सहज सिंगार।
उतरत चढ़त नवेलिया, तिय कै बार ॥ 74 ॥

पाठान्तर—1. गैभो 2. अवनवा । 3. भो । 4. भिनुसार । 5. तुव । 6. जोहति । 7. सूनी । 8. पाय । 9. लोभाय । 10. सेज । 11. चितवति । 12. दहु कै बार । 13. हरि ।

[परकीया वासकसज्जा]

सोवत सब गुरु लोगवा, जानेउ बाल।
दीन्हेसि खोलि खिरकिया, उठि कै हाल ॥ 75 ॥

[सामान्या वासकसज्जा]

कीन्हेसि सबै सिंगरवा, चातुर बाल।
ऐहै प्रानपिअरवा,[1] लै मनिमाल ॥ 76 ॥

[मुग्धा स्वाधीनपतिका]

आपुहि देत जवकवा, गहि गहि पाय[2]।
आपु देत मोहि पियवा, पान खवाय ॥ 77 ॥

[मध्या स्वाधीनपतिका]

प्रीतम करत पियरवा, कहल न जात[3]।
रहत गढ़ावत सोनवा, इहै[4] सिरात ॥ 78 ॥

[प्रौढ़ा स्वाधीनपतिका]

मैं अरु मोर पियरवा, जस जल मीन।
बिछुरत तजत परनवा,[5] रहत अधीन ॥ 79 ॥

[परकीया स्वाधीनपतिका]

मो[6] जुग नैन चकोरवा, पिय मुख चंद।
जानत है तिय अपुनै, मोहि सुखकंद ॥ 80 ॥

[सामान्या स्वाधीनपतिका]

लै हीरन के हरवा, मानिकमाल[7]।
मोहि रहत पहिरावत, बस ह्वै लाल ॥ 81 ॥

[मुग्धा अभिसारिका]

चलीं लिवाइ नवेलिअहि, सखि सब संग।
जस हुलसत गा[8] गोदवा, मत्त मतंग ॥ 82 ॥

पाठान्तर—1. पियरवा । 2. पाँय । 3. जानि । 4. यहै । 5. परनवाँ । 6. मे ।
7. मोतिक । 8. गो ।

[मध्या अभिसारिका]

पहिरे लाल अछुअवा, तिय-गज पाय।
चढ़े नेह-हथिअवहा, हुलसत जाय॥ 83॥

[प्रौढ़ा अभिसारिका]

चली रैंनि[1] अँधिअरिया,[2] साहस गाढ़ि।
पायन केर[3] कँगनिया,[4] डारेसि[5] काढ़ि॥ 84॥

[परकीया कृष्णाभिसारिका]

नील मनिन के हरवा, नील सिंगार।
किए रैंनि[6] अँधिअरिया,[7] धनि अभिसार॥ 85॥

[शुक्लाभिसारिका]

सेत कुसुम कै हरवा,[8] भूषन सेत।
चली रैंनि उँजिअरिया,[9] पिय के हेत॥ 86॥

[दिवाभिसारिका]

पहिरि बसन जरतरिया,[10] पिय के होत।
चली जेठ दुपहरिया, मिलि रवि जोत॥ 87॥

[गणिका अभिसारिका]

धन हित कीन्ह सिंगरवा, चातुर बाल।
चली संग लै चेरिया, जहवाँ लाल॥ 88॥

[मुग्धा प्रवत्स्यत्पतिका]

परिगा[11] कानन सखिया पिय कै गौन।
बैठी कनक पलँगिया, ह्वै[12] कै मौन॥ 89॥

[मध्या प्रवत्स्यत्पतिका]

सुठि सुकुमार तरुनिया, सुनि पिय-गौन।
लाजनि पौढ़ि ओबरिया, ह्वै कै मौन॥ 90॥

पाठान्तर—1. रइनि 2. अँधियरिया। 3. फेरि। 4. कँगनिआ। 5. डारेस। 6. रइनि। 7. अँधिअरिवा। 8. हरुवा। 9. उजिअरिया। 10. जरि-हरिया। 11. परिगो। 12. होइ।

[प्रौढ़ा प्रवत्स्यत्पतिका]

बन घन फूलहि टेसुआ, बगिअनि बेलि।
चलेउ बिदेस पियरवा[1] फगुआ खेलि ॥ 91 ॥

[परकीया प्रवत्स्यत्पतिका]

मितवा चलेउ बिदेसवा, मन अनुरागि।
पिय[2] की सुरत गगरिया, रहि मग लागि ॥ 92 ॥

[गणिका प्रवत्स्यत्पतिका]

पीतम इक सुमिरिनिया, मुहि[3] देइ जाहु।
जेहि जप तोर बिरहवा, करब[4] निबाहु ॥ 93 ॥

[मुग्धा आगतपतिका]

बहुत दिवस पर पियवा, आयेउ[5] आज।
पुलकित नवल दुलहिया,[6] कर[7] गृह-काज[8] ॥ 94 ॥

[मध्या आगतपतिका]

पियवा आय[9] दुअरवा, उठि किन देख[10]।
दुरलभ पाय[11] बिदेसिया, मुद अवरेख[12] ॥ 95 ॥

[प्रौढ़ा आगतपतिका]

आवत सुनत तिरियवा, उठि हरषाइ।
तलफत मनहुँ मछरिया, जनु जल पाइ[13] ॥ 96 ॥

[परकीया आगतपतिका]

पूछन[14] चली खबरिया, मितवा तीर।
हरखित अतिहि तिरियवा पहिरत चीर[15] ॥ 97 ॥

पाठान्तर—1. तब पिय चलेउ बिदेसवा। 2. तिय। 3. मोहि। 4. करौं
5. आएहु। 6. बधुइआ। 7 कर। 8. काजु। 9. पौरि। 10. देखु
11. पाइ। 12 जिय के लेखु।
13. पावन प्रान-पियरवा, हेरेउ आइ।
तलफत मीन तिरिअवा, जिमि जल पाइ ॥
14. पूछन।
15. नैहर खांज निरिखवा, पहिरि सुचीर ॥

[गणिका आगतपतिका]

तौ[1] लगि मिटिहि[2] न मितवा, तन की पीर।
जौ लगि पहिर[3] न हरवा, जटित सुहीर ॥ 98 ॥

[नायक]

सुंदर चतुर धनिकवा, जाति के[4] ऊंच।
केलि-कला परविनवा, सील समूच ॥ 99 ॥

[नायक भेद]

पति, उपपति, वैसिकवा, त्रिविध वखान।

[पति लक्षण]

विधि सो ब्याह्यो गुरु जन, पति सो जानि ॥ 100 ॥

[पति]

लैके सुघर खुरुपिया, पिय के साथ।
छइबै एक छतरिया, बरखत पाथ ॥ 101 ॥

[अनुकूल]

करत न हिय[5] अपरधवा, सपनेहुँ पीय[6]।
मान करन की बेरिया,[7] रहि गइ हीय[8] ॥ 102 ॥

[दक्षिण]

सौतिन[9] करहिं[10] निहोरवा, हम कहँ देहु।
चुन चुन चंपक चुरिया,[11] उच से[12] लेहु ॥ 103 ॥

[शठ]

छूटेउ लाज डगरिया,[13] औ कुल कानि।
करत जात[14] अपरधवा, परि गइ[15] बानि ॥ 104 ॥

पाठान्तर—1. तब। 2. मिटैं। 3. पहिरि। 4. जातिउ। 5. नही। 6. पीव।
7. सपना 8. जीय 9. सब मिलि। 10. करैं। 11. टँड़िआ।
12. उचइ सो। 13. गरिअवा। 14. रोज। 15. परिगो।

[धृष्ट]

जहवाँ[1] जात[2] रइनियाँ[3] तहवाँ जाहु।
जोरि नयन निरलजवा, कत मुसुकाहु ॥ 105 ॥

[उपपति]

झाँकि झरोखन गोरिया, अँखियन जोर[4]।
फिरि चितवन[5] चित मितवा, करत निहोर[6] ॥ 106 ॥

[वचन-चतुर]

सघन कुंज अमरैया,[7] सीतल छाँह[8]।
झगरत[9] आय कोइलिया, पुनि उड़ि जाहु[10] ॥ 107 ॥

[क्रिया-चतुर]

खेलत जानेसि टोलवा,[11] नंदकिसोर।
छुइ वृषभानु कुँअरिया, होगा चोर ॥ 108 ॥

[वैशिक]

जनु अति नील अलकिया बनसी लाय[12]।
भो मन बारबधुअवा, तिय बझाय ॥ 109 ॥

[प्रोषित नायक]

करवौं[13] ऊँच अटरिया, तिय सँग केलि।
कबधौं पहिरि गजरवा, हार चमेलि ॥ 110 ॥

[मानी]

अब भरि जनम सहेलिया, तकब न ओहि।
ऐंठलि गइ अभिमनिया, तजि कै मोहि ॥ 111 ॥

[स्वप्नदर्शन]

पीतम मिलेउ[14] सपनवाँ भइ[15] सुख-खानि!
आनि जगाएसि[16] चेरिया, भइ[17] दुखदानि ॥ 112 ॥

पाठान्तर—1. जहँ। 2. जागेउ। 3. रैनियाँ 4. जोरि। 5. चितवनि। 6. निहोरि। 7. अमरइया। 8 छाँहि। 9. झगरति। 10. जाँहि। 11. रोनिया। 12. सटकी नील जुलफिया बनसी माइ। 13. करिकैं। 14 मिले। 15. भो। 16. जगायेसि। 17. भो।

[चित्र दर्शन]

पिय मूरति चितसरिया, चितवन[1] बाल।
सुमिरत[2] अवधि बसरवा, जपि जपि माल ॥ 113 ॥

[श्रवण]

आयेउ मीत बिदेसिया, सुन सखि तोर।
उठि किन करसि सिंगरवा, सुनि सिख मोर ॥ 114 ॥

[साक्षात दर्शन]

बिरहिनि अवर[3] बिदेसिया, भै इक ठौर।
पिय-मुख तकत तिरियवा, चंद चकोर ॥ 115 ॥

[मंडन]

सखियन कीन्ह सिंगरवा रचि बहु भाँति।
हेरति नैन अरसिया, मुरि[4] मुसुकाति ॥ 116 ॥

[शिक्षा]

छाकहु बैठ दुअरिया[5] मीजहु[6] पाय[7]।
पिय तन पेखि गरमिया, बिजन डोलाय[8] ॥ 117 ॥

[उपालंभ]

चुप होइ[9] रहेउ[10] सँदेसवा, सुनि मुसुकाय।
पिय निज कर बिछवनवा, दीन्ह उठाय[11] ॥ 118 ॥

[परिहास]

बिहँसति भौहैं चढ़ाये, धनुष मनोय[12]।
लावत उर अवलनिया,[13] उठि उठि पीय[14] ॥ 119 ॥

पाठान्तर—1. देखत। चितवत, बितवत। 3. ओर। 4. मुँहु। 5. पके बइठि गोडबरिया। 6. मीडहु। 7. पाउ। 8. डुलाउ। 9. ह्वै। 10. रहे। 11. हाथ बिरचना, दीन्ह पठाय। 12. मनोज। 13. उपटनवाँ। 14. ऐंठि उरोज।

बरवै (भक्तिपरक)

बन्दौं[1] बिघन-बिनासन, ऋधि-सिधि-ईस।
निर्मल बुद्धि-प्रकासन, सिसु ससि सीस॥ 1 ॥
सुमिरौं[2] मन दृढ़ करिकैं, नन्दकुमार।
जे बृषभान-कुँवरि कैं[3] प्रान-अधार॥ 2 ॥
भजहु चराचर-नायक, सूरज देव।
दीन जनन सुखदायक, तारन एव[4] ॥ 3 ॥
ध्यावौं[5] सोच-बिमोचन, गिरिजा-ईस।
नागर भरन त्रिलोचन, सुरसरि-सीस॥ 4 ॥
ध्यावौं[6] बिपद[7]-बिदारन, सुअन-समीर।
खल दानव बनजारन प्रिय रघुबीर॥ 5 ॥
पुन पुन[8] बन्दौं[9] गुरु के, पद जलजात।
जिहि प्रताप[10] तें मन के तिमिर बिलात[11] ॥ 6 ॥
करत घुमड़ि घन-घुरवा, मुरवा रोर।
लगि रह बिकसि अँकुरवा, नन्दकिसोर॥ 7 ॥
बरसत मेघ चहूँ दिसि, मूसरधार।
सावन आवन कीजत, नन्दकुमार॥ 8 ॥
अजौं न आये सुधि कै, सखि घनश्याम।
राख लिये कहुँ बसि कै, काहू बाम॥ 9 ॥
कबलौं रहिहै सजनी, मन में धीर।
सावन हूँ नहिं आवन, कित बलबीर॥ 10 ॥
घन घुमड़े चहुँ ओरन, चमकत बीज।
पिय प्यारी मिलि झूलत, सावन तीज॥ 11 ॥

पाठान्तर—1. बन्दहु, बन्दहुँ। 2. सुमिरहु 3. कुमारिकै। 4. त्यारन ऐव, त्यारन एव। 5. ध्यावहु, ध्यावहुँ। 6. ध्यावहुँ। 7. बिपति। 8. पुनि-पुनि। 9. बन्दहुँ। 10. प्रसाद। 11. नसात।

पीव पीव कहि चातक, सठ अधरात।
करत बिरहिनी तिय के, हिय उतपात ॥ 12 ॥
सावन आवन कहिगे, स्याम सुजान।
अजहुँ न आये सजनी, तरफत प्रान ॥ 13 ॥
मोहन लेउ मया करि, मो सुधि आय।
तुम बिन मीत अहर-निसि, तरफत जाय ॥ 14 ॥
बढ़त जात चित दिन-दिन, चौगुन चाव।
मनमोहन तैं मिलवौ राखि क दाँव ॥ 15 ॥
मनमोहन बिन देखे, दिन न सुहाय।
गुन न भूलिहौं सजनी, तनक मिलाय ॥ 16 ॥
उमड़ि-उमडि घन घुमड़े दिसि बिदिसान।
सावन दिन मनभावन, करत पयान ॥ 17 ॥
समुझत सुमुखि सयानी, बादर झूम।
बिरहिन के हिय भभकत तिनकी धूम ॥ 18 ॥
उलहे नये अँकुरवा, बिन बलबीर।
मानहु मदन महिप के बिन पर तीर ॥ 19 ॥
सुगमहि गातहि का रन जारत देह।
अगम महा अति पान सुघर सनेह ॥ 20 ॥
मनमोहन तुव मूरति, बेरिझवार।
बिन पयान मुहि बनिहै, सकल बिचार ॥ 21 ॥
झूमि झूमि चहुँ ओरन, बरसत मेह।
त्यों त्यों पिय बिन सजनी, तरफत देह ॥ 22 ॥
झूँठी झूँठी सौहें हरि नित खात।
फिर जब मिलत मरू के, उतर बतात ॥ 23 ॥
डोलत त्रिविध मरुतवा, सुखद सुढार।
हरि बिन लागत सजनी, जिमि तरवार ॥ 24 ॥
कहियो पथिक सँदेसवा, गहि के पाय।
मोहन तुम बिन तनकहु, रह्यो न जाय ॥ 25 ॥
जब ते आयो सजनी, मास असाढ़।
जानी सखि वा तिय के, हिय की गाढ़ ॥ 26 ॥

मनमोहन बिन तिय के, हिय दुख बाढ़।
आयो[1] नन्द-ढोठनवा, लगत असाढ़ ॥ 27 ॥
वेद पुरान बखानत, अधम-उधार।
केहि कारन करुनानिधि, करत बिचार ॥ 28 ॥
लगत असाढ़ कहत हो, चलन किसोर।
घन घुमड़े चहुँ ओरन, नाचत मोर ॥ 29 ॥
लखि पावस ऋतु सजनी, पिय परदेस।
गहन लग्यौ अबलनि पै, धनुष सुरेस ॥ 30 ॥
बिरह बढ़्यौ सखि अंगन, बढ़्यौ चबाव।
कर्‌यौ निठुर नन्दनन्दन, कौन कुदाव ? ॥ 31 ॥
भज्यो किते न जनम भरि, कितनी जाग।
संग रहत या तन को, छाँही भाग ॥ 32 ॥
भज रे मन नँदनन्दन, बिपति बिदार।
गोपी जन-मन-रंजन, परम उदार ॥ 33 ॥
जदपि बसत है सजनी, लाखन लोग।
हरि बिन कित यह चित को, सुख सजोग ॥ 34 ॥
जदपि भई जल-पूरित, छितव सुआस।
स्वाति बूँद बिन चातक, मरत पिआस ॥ 35 ॥
देखन ही को निस दिन, तरफत देह।
यही होत मधुसूदन, पूरन नेह ? ॥ 36 ॥
कब ते देखत सजनी, बरसत मेह।
गनत न चढ़े अटन पै, सने सनेह ॥ 37 ॥
बिरह बिथा ते लखियत, मरिबौ भूरि।
जौ नहिं मिलिहै मोहन, जीवन मूरि ॥ 38 ॥
ऊधो भलो न कहनौ, कछु पर पूठि।
साँचे ते भे झूठे, साँची झूठि ॥ 39 ॥
भादों निस अँधियरिया घर अँधिआर।
बिसर्‌यो सुघर बटोही, सिव आगार ॥ 40 ॥
हौं लखिहौं री सजनी, चौथ-मयंक।
देखौं केहि बिधि हरि सो लगै कलंक ॥ 41 ॥

पाठान्तर—1. आये।

इन बातन कछु होत न, कहो हजार।
सब ही तें हँसि बोलत, नन्द-कुमार ॥ 42 ॥
कहा छलत हो ऊधो, दै परतीति।
सपनेहू नहिं बिसरै, मोहन-मीति ॥ 43 ॥
बन उपवन गिरि सरिता, जिती कठोर।
लगत दहे से बिछुरे, नंदकिसोर ॥ 44 ॥
भलि भलि दरसन दीनेहु, सब निसि-टारि।
कैसे आवन कीनेहु, हौं बलिहारि ॥ 45 ॥
आदिहि ते सब छुटि गा, जग ब्योहार।
ऊधो अब न तिनो भरि, रही उधार ॥ 46 ॥
घेर रह्यो दिन रतियाँ, बिरह बलाय।
मोहन की वह बतियाँ, ऊधो हाय ! ॥ 47 ॥
नर नारी मतवारी, अचरज नाहि।
होत बिटप हू नाँगे फागुन माँहि ॥ 48 ॥
सहज हँसोई बातें, होत चवाइ।
मोहन को तनि सजनी, दै समुझाइ ॥ 49 ॥
ज्यों चौरासी लख मे, मानुष देह।
त्यों ही दुर्लभ जग मे, सहज सनेह ॥ 50 ॥
मानुष तन अति दुर्लभ, सहजहि पाय।
हरि-भजि कर सत संगति, कह्यौ जताय ॥ 51 ॥
अति अदभुत छबि सागर, मोहन गात।
देखत ही सखि बूड़त, दृग जलजात ॥ 52 ॥
निरमोही अति झूठो, साँवर गात।
चुभ्यौ रहत चित को धौं, जानि न जात ॥ 53 ॥
बिन देखे कल नाहि न, इन अँखियान।
पल पल कटत कलप सों, अहो सुजान ॥ 54 ॥
जब तक मोहन झूँठो, सौंहैं खात।
इन बातन ही प्यारे, चतुर कहात ॥ 55 ॥
ब्रज-बासिन के मोहन, जीवन - प्रान।
ऊधो यह सँदेसवा, अकह कहान ॥ 56 ॥

मोहिं मीत बिन देखे, छिन न सुहात।
पल पल भरि भरि उलझत, दृग जलजात॥ 57॥
जब ते बिछुरे मितवा, कहु कस चैन।
रहत भर्‌यो हिय साँसन, आँसुन नैन॥ 58॥
कैसे जीवत कोऊ, दूरि बसाय।
पल अन्तर हू सजनी, रह्यो न जाय॥ 59॥
जान कहत हौं ऊधो, अवधि बताइ।
अवधि अवधि लौं दुस्तर, परत लखाइ॥ 60॥
मिलन न बनिहै भाखत, इन इक टूक।
भये सुनत ही हिय के, अगनित टूक॥ 61॥
गये हेरि हरि सजनी, बिहँसि कछूक।
तब ते लगनि अगिनि की, उठत भभूक॥ 62॥
मनमोहन की सजनी, हँसि बतरान।
हिय कठोर कीजत पै, खटकत आन॥ 63॥
होरी पूजत सजनी जुर नर नारि।
हरि बिनु जानहु जिय में, दई दवारि॥ 64॥
दिस विदसान करत ज्यों, कोयल कूक।
चतुर उठत है त्यों त्यों, हिय में हूक॥ 65॥
जब तें मोहन बिछुरे, कछु सुधि नाहिं।
रहे प्रान परि पलकनि, दृग मग माहिं॥ 66॥
उझकि उझकि चित दिन दिन, हेरत द्वार।
जब ते बिछुरे सजनी, नन्दकुमार॥ 67॥
जक न परत बिन हेरे, सखिन सरोस।
हरि न मिलत बसि नेरे, यह अफसोस॥ 68॥
चतुर मया करि मिलिहौ, तुरतहिं आय।
बिन देखे निसबासर, तरफत जाय॥ 69॥
तुम सब भाँतिन चतुरे, यह कल बात।
होरी से त्योहारन, पीहर जात॥ 70॥
और कहा हरि कहिये, धनि यह नेह।
देखन ही को निसदिन, तरफत देह॥ 71॥

जब ते बिछुरे मोहन, भूख न प्यास।
बेरि बेरि बढ़ि आवत, बड़े उसास॥ 72॥
अन्तरगत हिय बेधत, छेदत प्रान।
विष सम परम सवन तें, लोचन बान॥ 73॥
गली अँधेरी मिल कै, रहि चुपचाप।
बरजोरी मनमोहन, करत मिलाप॥ 74॥
सास ननद गुरु पुरजन, रहे रिसाय।
मोहन हू अस निसरे, हे सखि हाय!॥ 75॥
उन बिन कौन निबाहै, हित की लाज।
ऊधो तुमहू कहियो, धनि ब्रजराज॥ 76॥
जेहिके लिये जगत में बजै निसान।
तेहिते करे अबोलन, कौन सयान॥ 77॥
रे मन भज निस बासर, श्री बलबीर।
जे बिन जाँचे टारत, जन की पीर॥ 78॥
बिरहिन को सब भाखत, अब जनि रोय।
पीर पराई जानै, तब कहु कोय॥ 79॥
सबै कहत हरि बिछुरे, उर धर धीर।
बौरी बाँझ न जानै, ब्यावर पीर॥ 80॥
लखि मोहन की बंसी, बंसी जान।
लागत मधुर प्रथम पै, बेधत प्रान॥ 81॥
कोटि जतन हू फिरतन बिधि की बात।
चकवा पिंजरे हू सुनि बिमुख बसात॥ 82॥
देखि ऊजरी पूछत, बिन ही चाह।
कितने दामम बेचत, मैदा साह॥ 83॥
कहा कान्ह ते कहनो, सब जग साखि।
कौन होत काहू के, कुबरी राखि॥ 84॥
तैं चंचल चित हरि को, लियो चुराइ।
याही तें दुचितो सी, परत लखाइ॥ 85॥
मी गुजरद ई दिलरा, बेदिलदार।
इक इक साअत हम चूँ, साल हजार॥ 86॥(फ़ारसी)

पाठान्तर—1. ओ।

नदनागर पद परसी, फूलत जौन।
भेटत सोक असोक सु, अचरज कौन॥ 87॥
समुझि मधुप कोकिल को, यह रस रीति।
सुनहु स्याम की सजनी, का परतीति॥ 88॥
नृप जोगी सब जानत, होत बयार।
संदेसन तौ राखत, हरि ब्यौहार॥ 89॥
मोहन जीवन प्यारे, कस हित कीन।
दरसन ही कों तरफत, ये दृग मीन॥ 90॥
भज मन राम सियापति, रघुकुल ईस।
दीनबंधु दुख टारन, कौसलधीस॥ 91॥
भज नरहरि, नारायन, तजि बकवाद।
प्रगटि खंभ ते राख्यो, जिन प्रहलाद॥ 92॥
गोरज-धन-बिच राखत, श्री ब्रजचंद।
तिय दामिनि जिमि हेरत, प्रभा अमंद॥ 93॥
गर्कज मैं शुद आलम, चंद हजार।
बे दिलदार के गीरद, दिलम क़रार॥ 94॥(फ़ारसी)
दिलबर ज़द बर जिगरम, तीरे निगाह।
तपदिः जाँ मीआयद, हरदम आह॥ 95॥(फ़ारसी)
कै गायम अहवालम, पेशे-निगार।
तनहा नजर न आयद, दिल लाचार॥ 96॥(फ़ारसी)
लोग लुगाई हिल मिल, खेलत फाग।
पर्यौ उड़ावन मोकौं, सब दिन काग॥ 97॥
मो जिम कौरो सिगरो, ननद जिठानि।
भई स्याम सों तब त, तनक पिछानि॥ 98॥
होत बिकल अनलेखे, सुघर कहाय।
को सुख पावत सजनी, नेह लगाय॥ 99॥
अहो सुधाकर प्यारे, नेह निचोर।
देखन हीं कों तरसैं, नैन चकोर॥ 100॥
आँखिन देखत सब ही, कहत सुधारि।
पै जग साँची प्रीत न, चातक टारि॥ 101॥

पथिक पाय पनघटवा, कहत पियाव।
पैयां परौं ननदिया, फेरि कहाव ॥ 102 ॥
बरि गइ हाथ उपरिया, रहि गइ आगि।
घर के बाट विसरि गइ, गुहने लागि ॥ 103 ॥
अनधन देखि लिलरवा, अनख न धार।
समलहु दिय दुति मनसिज, भल करतार ॥ 104 ॥
जलज बदन पर थिर अलि, अनखन रूप।
लीन हार हिय कमलहि, डसत अनूप ॥ 105 ॥

---

(101) यहीं तक पं० मायाशंकर से प्राप्त प्रति समाप्त होती है।
(102) 'कविता कौमुदी' से उद्धृत।
(103) ना० प्रचारिणी पत्रिका, नया संदर्भ, भा० 9, पृ० 151
(104) हिन्दी शब्दसागर 'अनख' शब्द।

शृंगार-सोरठा

गई आगि उर लाय, आगि नेन आई जो तिय।
लागी नाहिं बुझाय, भभकि भभकि बरि बरि उठै॥ 1॥

तुरुक गुरुक भरिपूर, डूबि डूबि सुरगुरु उठै।
चातक चातक दूरि, देह दहे बिन देह को॥ 2॥

दीपक हिए छिपाय, नवल वधू घर ले चली।
कर विहीन पछिताय, कुच लखि जिन सीसैं धुनैं॥ 3॥

पलटि चली मुसुकाय दुति रहीम उपजात अति।
बाती सी उसकाय मानों दीनी दीप की॥ 4॥

यक नाही यक पी हिय रहीम होती रहै।
काहु न भई सरीर, रीति न बेदन एक सी॥ 5॥

रहिमन पुतरी स्याम, मनहुँ जलज मधुकर लसै।
कैधों शालिग्राम, रूपे के अरघा धरे॥ 6॥

मदनाष्टक

शरद[1]-निशि निशीथे चाँद की रोशनाई।
सघन वन निकुंजे कान्ह वंशी वजाई॥
रति, पति, सुत, निद्रा, साइयाँ छोड़ भागी।
मदन-शिरसि भूयः क्या बला आन लागी[2]॥ 1॥

कलित ललित माला या जवाहिर जड़ा था।
चपल चखन वाला चाँदनी में खड़ा था॥
कटि-तट बिच मेला पीत सेला नवेला।
अलि बन अलबेला यार मेरा अकेला॥ 2॥

दृग छकित छबीलो छैलरा की छरी थी।
मणि जटित रसीली माधुरी मूँदरी थी॥
अमल कमल ऐसा खूब से खूब देखा।
कहि सकत न जैसा श्याम का हस्त देखा॥ 3॥

पाठान्तर—1. सरद।
2. (अ) असनी वाले पाठ में छठा तथा 'का० ना० प्र० पत्रिका' वाले पाठ में चौथा छंद है।
(आ) असनी से प्राप्त मदनाष्टक मे प्रारम्भिक छन्द इस प्रकार है—
दृष्टा तत्र विचित्रता तरुलता, मैं था गया बाग़ में।
कांश्चित् तत्र कुरंगशावनयना, गुल तोडती थी खड़ी॥
उन्मद्‌भ्रूधनुषा कटाक्षविशिखैः घायल किया था मुझे।
तत्सीदामि सदैव मोहजलधौ, हे दिल गुज़ारो शुकर॥
'काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका' और 'रहीम कवितावली' में पहला छन्द है—
मनसि मम नितान्तम् आयके बासु कीया।
तन धन सब मेरा मान तें छीन लीया॥
अति चतुर मृगाक्षी देखतें मौन भागी।
मदन निरसि भूयः क्या बला आन लागी॥

कठिन[1] कुटिल कारी देख दिलदार जुलफें[2]।
अलि कलित विहारी[3] आपने जी की कुलफें[4]॥
सकल शशिकला को रोशनी-हीन लेखौं।
अहह ! ब्रजलला को किस तरह फेर देखौं[5]॥ 4॥

जरद वसन-वाला गुल चमन देखता था।
झुक झुक मतवाला गावता रेखता था॥
श्रुति युग चपला से कुण्डलें झूमते थे।
नयन कर तमाशे मस्त ह्वं घूमते थे॥ 5॥

तरल तरनि सी हैं तीर सी नोकदारें।
अमल कमल सी हैं दीर्घ हैं दिल बिदारें॥
मधुर मधुप हेरें माल मस्ती न राखें।
विलसति मन मेरे सुंदरी श्याम आँखें॥ 6॥

'ना० प्रचारिणी पत्रिका' और 'रहीम कवितावली' मे दूसरा
व तीसरा छन्द है—

(2) बहति मरुति मन्दम् मैं उठी राति जागी।
(असनी वाले पाठ मे यह चौथा छन्द है।)
शशि-कर कर लागे सेज ते चैन भागी॥
(शशि-कर कर लागे सेज को छोड़ भागी)
अहह बिगत स्वामी क्या करौं मैं अभागी।
मदन शिरसि भूय क्या बला आन लागी॥

(3) हरनयनहुताशज्वालया जो जलाया।
रति-नयनजलौघे खाक बाकी बहाया॥
तदपि दहति चित्तम्, मामकम क्या करौंगो।
मदन शिरसि भूय. क्यो बला आन लागी॥

पाठान्तर—1. अलक। 2. जुल्फें। 3. निहारें। 4. आपने दिल की कुल्फें।
5. असनी वाले पाठ मे यह तीसरा छन्द है।

भुजंग जुग किधौं हैं काम कमनैत सोहैं।
नटवर! तव मोहैं बाँकुरी मान भौंहें॥
सुनु सखि! मृदु बानी बेदुरुस्तो अकिल में।
सरल सरल सानी कै गई सार दिल में[1]॥ 7॥

पकरि परम प्यारे सांवरे को मिलाओ।
असल अमृत प्याला क्यों न मुझको पिलाओ॥
इति वदति पठानी मनमथांगी विरागी।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी[2]॥ 8॥

---

1. असनी वाले पाठ मे सातवाँ छन्द इस प्रकार है—
हरनयनहुताशज्वालया भस्मिभूत.।
रतिनयन जलौघे खाक बाकी बहाया॥
तदपि दहति नित्तं मामकम् क्या करौंगी।
मदन शिरसि भूय क्या बला आन लागी॥
('का० ना० प्र० पत्रिका' तथा 'रहीम कवितावली' के पाठ में यह तीसरा है।)
'का० ना० प्र० पत्रिका' तथा 'रहीम कवितावली' मे सातवाँ छन्द इस प्रकार है—
तव बदन मयंकी ब्रह्म की चोप बाढ़ी।
मुख छवि लखि भू पै चाँद ते कांति गाढ़ी॥
मदन-मथित रम्भा देखतै मोहि भागी।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी॥
2. असनी वाला अंतिम छन्द है—
हिमरितु रतिभामा सेज लोटौं अकेली।
उठत विरह ज्वाला क्यों सहौंरी सहेली॥
इति वदति पठानी मदमदांगी विरागी।
(चकित नयन बाला तत्र निद्रा न लागी)
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी॥
('का० ना० प्र० पत्रिका' तथा 'रहीम कवितावली' मे यह पाँचवाँ छन्द है।)
'का० ना० प्र० पत्रिका' तथा 'रहीम कवितावली' में यह पाँचवाँ छन्द है—
नभसि घन घनान्ते है घनी कैसी छाया।
पथिकजनवधूनाम् जन्म केता गँवाया॥
इति वदति पठानी मन्मथांगी विरागी।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी॥

फुटकर पद

(घनाक्षरी)

अति अनियारे मानों सान दै सुधारे,
    महा विष के बिषारे[1] ये करत पर-घात हैं।
ऐसे अपराधी देख अगम अगाधी यहै,
    साधना जो साधी हरि हिय में अन्हात हैं॥
बार बार बोरे याते लाल लाल डोरे भये,
    तोहू तो 'रहीम' थोरे बिधि ना सकात हैं।
घाइक घनेरे दुखदाइक हैं मेरे नित,
    नैन बान तेरे उर बेधि बेधि जात हैं॥ 1 ॥

पट चाहे तन पेट चाहत छदन मन
    चाहत है धन, जेती संपदा सराहिबो[2]।
तेरोई कहाय कँ 'रहीम' कहै दीनबंधु
    आपनी बिपत्ति जाय काके द्वार काहिबो॥
पेट भर खायो चाहे, उद्यम बनायो चाहे,
    कुटुंब[3] जियायो चाहे काढ़ि गुन लाहिबो।
जीविका हमारी जो पै औरन के कर डारो,
    ब्रज के बिहारी तो तिहारी कहाँ[4] साहिबो॥ 2 ॥

बड़ेन सों जान पहिचान कै रहीम काहू,
    जो पै करतार ही न सुख देनहार है।
सीत-हर सूरज सों नेह कियो याही हेत,[5]
    ताऊ पै कमल जारि डारत तुषार है[6]॥

पाठान्तर—1. बिषारे। 2. सराहबी। 3. कुटुम। 4. कहा।
5. सीत-हर सूरज सों प्रीति कियो पंकज ने,
6. तऊ कंज-बनन को जारत तुषार है।

नीरनिधि माँहि धस्यो[1] शंकर के सीस बस्यो,
तऊ ना कलंक नस्यो ससि में सदा रहै।
बड़ो रीझिवार[2] है, चकोर दरबार है,
कलानिधि सो यार तऊ चाखत अँगार है[3] ॥ 3 ॥

मोहिबो निछोहिबो सनेह में तो नयो नाहिं,
भले ही निठुर भये काहे को लजाइये।
तन मन रावरे सो मतो के मगन हेतु,
उचरि गये ते कहा तुम्हे खोरि लाइये॥
चित लाग्यो जित जैये तितही 'रहीम' नित,
धाधबे के हित इत एक बार आइये।
जान हुरसी उर बसी है तिहारे उर,
मोसों प्रीति बसी तऊ हँसी न कराइये ॥ 4 ॥

(सवैया)

जाति हुती सखि गोहन में मन मोहन को लखिकै ललचानो।
नागरि नारि नई ब्रज की उनहूं नँदलाल को रीझिबो जानो॥
जाति भई फिरि कै चितई तब भाव 'रहीम' यहै उर आनो।
ज्यों कमनैत दमानक मे फिरि तीर सों मारि लै जात निमानो ॥ 5 ॥

जिहि कारन बार न लाये कछू गहि संभु-सरासन दोय किया।
गये गेहहिं त्यागि के ताही[4] समैं सु निकारि पिता बनवास दिया॥
कहे बीच 'रहीम' रर्‌यो न कछू जिन कीनो हुतो बिनुहार[5] हिया।
विधि यों न सिया रसवार सिया करवार सिया पिय सार सिया ॥ 6 ॥

पाठान्तर—1. छीरनिधि बीच-धस्यो। उदधि बीच धस्यो। क्षीरनिधि माँहि धँस्यो।
2. रीझवार। 3. सुधाधर यार ए पै चुगत अँगार है।
(6) नवीन-कृत 'प्रबोध रस-सुधासागर' मे यह पाठ है—
जिहि कारन बार न लायो कछू गहि संभु सरासन द्वै जु किया।
न हुतो समयो बनवासहु को पै निकास पिता बनवास दिया॥
मजि भेद 'रहीम' रह्‌यो न कछू करि राम हुती उनहार दिया।
विधि यो न सिया सुख बार सिया को सुवार सिया पतिवार सिया॥
4. ताहि। 5. उनहार।

दीन चहैं करतार जिन्हें सुख सो तो 'रहीम' टरै नहिं टारे।
उद्यम पौरुष कीने बिना धन आवत आपुहिं हाथ पसारे॥
दैव हँसे अपनी अपनी विधि के परपंच न जात बिचारे।
बेटा भयो वसुदेव के धाम औ दुंदुभि बाजत नंद के द्वारे॥ 7॥

पुतरी अतुरीन कहूँ मिलि कै लगि लागि गयो कहुँ काहु करैटो।
हिरदै दहिबै सहिबै ही को है कहिबै को कहा कछु है गहि फेंटो॥
सूधे चितै तन हा हा करें हू 'रहीम' इतो दुख जात क्यों मेटो।
ऐसे कठोर सों औ चितचोर सों कौन सी हाय घरी भई भेंटो॥ 8॥

कौन धौं सीख 'रहीम' इहाँ इन नैन अनोखि यै नेह की नाँधनि।
प्यारे सों पुन्यन भेंट भई यह लोक की लाज बड़ो अपराधनि॥
स्याम सुधानिधि आनन को मरिये सखि सूधें चितैवे को साधनि।
ओट किए रहतै न बनै कहतै न बनै बिरहानल बाधनि॥ 9॥

(दोहा)

धर रहसी रहसी धरम खप जासी खुरसाण।
अमर विसंभर ऊपरै, राखो नहचो राण॥ 10॥
तारायनि ससि रैन प्रति, सूर होंहि ससि गैन।
तदपि अँधेरो है सखी, पीऊ न देखै नैन॥ 11॥

पाठान्तर—(7) नवीन ने दूसरा यह पाठ दिया है और सन् 1897 की प्रकाशित 'भाषा-सार' में भी यही पाठ है।
दीनों चहै करतार जिन्हें सुख कौन 'रहीम' सकै तिहिं टारे।
उद्यम कोउ करो न करो धन आवत है बिन ताके हँकारे॥
दैव हँसे सब आपुस में विधि के परपंच न कोउ निहारे।
बालक आनक दुंदुभी के भयो दुंदुभी बाजत आन के द्वारे॥
(9) सीखो है ऐसो 'रहीम' कहा इन नैन अनोखे धौ नेह की नाँधन।
ओट भये रहते न बने कहते न बने बिरहानल राधन (दाधन)॥
पुन्यन प्यारे सों भेंट भई ए पै मौन (भौन) कुसंग मिल्यो अपराधन।
स्याम सुधानिधि आनन को (कौ) मरिये सखि सूधे चितैवे की साधन॥
(10) ध्रम रहसी रहसी धरा खिस जासे खुरसाण।
अमर विसंभर ऊपरे, नहचौ राखो राण॥

(पद)

छवि आवन मोहनलाल की।
काछनि काछे कलित मुरलि कर पीत पिछौरी साल की[1]॥
बंक तिलक केसर को कीने दुति मानो विधु बाल की।
बिसरत नाहिं सखी मो मन ते चितवनि नयन बिसाल की॥
नीकी हँसनि अधर सधरनि की छबि छीनी सुमन गुलाल की।
जल सों डारि दियो पुरइन पर डोलनि मुकता माल की॥
आप मोल बिन मोलनि डोलनि बोलनि मदनगोपाल की।
यह सरूप निरखै सोइ जानै इस 'रहीम' के हाल की॥12॥

कमल-दल नैननि की उनमानि।
बिसरत नाहिं सखी मो मन ते मंद मंद मुसकानि॥
यह दसननि दुति चपला हूते महा चपल चमकानि।
बसुधा की बसकरी मधुरता सुधा-पगी बतरानि॥
चढ़ी रहे चित उर बिसाल को मुकुतमाल थहरानि।
नृत्य-समय पीतांबर हू की फहरि फहरि फहरानि॥
अनुदिन श्री वृन्दावन ब्रज ते आवन आवन जानि।
अब 'रहीम' चित ते न टरति है सकल स्याम की बानि॥ 13॥

पाठान्तर—1. लाल काछनी काछे कर मुरली पीत पिछौरी साल की।

संस्कृत श्लोक

(श्लोक)

आनीता नटवन्मया तव पुरः श्रीकृष्ण ! या भूमिका।
व्योमाकाशखखांबराब्धिवसवस्त्वत्प्रीतयेऽद्यावधि ॥
प्रीतस्त्वं यदि चेन्निरीक्ष्य भगवन् स्वप्रार्थित देहि मे[1]।
नोचेद् ब्रूहि कदापि मानय पुनस्त्वेतादृशीं भूमिकाम्[2] ॥ 1॥

(अर्थ)

हे श्रीकृष्ण ! आपके प्रीत्यर्थ आज तक मैं नट की चाल पर आपके सामने लाया जाने से चौरासी लाख रूप धारण करता रहा। हे परमेश्वर ! यदि आप इसे (दृश्य) देख कर प्रसन्न हुए हों तो जो मैं माँगता हूं उसे दीजिए और नहो प्रसन्न हों तो ऐसी आज्ञा दीजिए कि मैं फिर कभी ऐसे स्वांग धारण कर इस पृथ्वी पर न लाया जाऊँ।

कबहुँक खग मृग मीन कबहुँ मर्कटतनु धरि कै।
कबहुँक सुर-नर-असुर-नाग-मय[3] आकृति करि कै॥
नटवत् लख चौरासि स्वांग धरि धरि मैं आयो।
हे त्रिभुवन नाथ ! रीझ को कछू न पायो॥
जो हो प्रसन्न तो देहु अब मुकति दान माँगहु बिहँस।
जो पै उदास तो कहहु इम मत धरु रे नर स्वांग अस॥
(ख़ानख़ाना कृत)

वपु लख चौरासी सजे नट सम रिझवन तोहि।
निरखि रीझि गति देहु कै खीझि निवारहु मोहि॥
(भारतेन्दु जी कृत)

पाठान्तर—1. प्रीतश्चेदय ता निरीक्ष्य भगवन् मत्'''।
2. पुनर्मामीदृशी भूमिका। 3. मय।

रिझवन हित श्रीकृष्ण, स्वांग मैं बहु बिध लायो।
पुर तुम्हार है अवनि अहंवह रूप दिखायो॥
गगन-वेत-ख-ख-व्योम-वेद बसु स्वांग दिखाए।
अत रूप यह मनुप रीझ के हेतु बनाए॥
जो रीझे तो दीजिए लजित रीझ जो चाय।
नाराज भए तो हुकुम कर दें स्वांग फेरि मन लाय[1]॥

(श्लोक)

रत्नाकरोऽस्ति सदनं गृहिणी च पद्मा,
किं देयमस्ति भवते जगदीश्वराय।
राधागृहीतमनसे मनसे च तुभ्यं,
दत्तं मया निजमनस्तदिदं गृहाण॥ 2॥

(अर्थ)

रत्नाकर अर्थात् समुद्र आपका गृह है और लक्ष्मीजी आपकी गृहिणी हैं तब हे जगदीश्वर! आप ही बतलाइए कि आप को क्या देने योग्य बच गया? राधिका जी ने आपका मन हरण कर लिया है, जिसे मैं आपको देता हूँ, उसे ग्रहण कीजिए।

रत्नाकर गृह, श्री प्रिया देय कहा जगदीश।
राधा मन हरि लीन्ह तब कस न लेहु मम ईश॥ (रत्न)

(श्लोक)

अहल्या पाषाण. प्रकृतिपशुरासीत् कपिचमू—
र्गुहो भूच्चांडालस्त्रितयमपि नीतं निजपदम्॥
अहं चित्ते नाश्मा पशुरपि तवार्चादिकरणे।
क्रियाभिश्चांडालो रघुवर नमामुद्धरसि किम्॥ 3॥

(अर्थ)

अहल्याजी पत्थर थी, बंदरों का समूह पशु था और निषाद चांडाल था पर तीनों को अपने-अपने पद में शरण दी। मेरा चित्त पत्थर

---

1. मनामीर के ठाकुर सुरसिंह के 'विविध संग्रह', पृ० 89 पर इसी आशय का पहला छप्पय खानखाना कृत दिया है और यह दूसरा छप्पय मु० देवीप्रसादजी ने किसी अज्ञात कवि का दिया है।

है, आपके पूजन में पशु समान हूँ और कर्म से भी चांडाल सा हूं इसलिए मेरा क्यों नहीं उद्धार करते।

(श्लोक)

यद्यात्रया व्यापकता हृता ते भिदैकता वाक्परता च स्तुत्या।
ध्यानेन बुद्धेः परतः परेश जात्याऽजता क्षन्तुमिहार्हसि त्वं ॥ 4 ॥

(अर्थ)

यात्रा करके मैंने आपकी व्यापकता, भेद से एकता, स्तुति करके वाक्परता, ध्यान करके आपका बुद्धि से दूर होना और जाति निश्चित करके आपका अजातिपन नाश किया है, सो हे परमेश्वर! आप इन अपराधों को क्षमा करो।

दृष्टा तत्र विचित्रिता तरुलता, मैं था गया बाग में।
काचित्तत्र कुरंगशावनयना, गुल तोड़ती थी खड़ी॥
उन्मद्भ्रूधनुषा कटाक्षविशिखैः घायल किया था मुझे।
तत्सीदामि सदैव मोहजलधौ, हे दिल गुजारो शुकर॥ 5 ॥

(अर्थ)

विचित्र वृक्षलता को देखने के लिए मैं बाग में गया था। वहाँ कोई मृग-शावक-नयनी खड़ी फूल तोड़ रही थी। भौं रूपी धनुष से कटाक्ष रूपी बाण चलाकर उसने मुझे घायल किया था। तब मैं सदा के लिए मोह रूपी समुद्र में पड़ गया। इससे हे हृदय, धन्यवाद दो।

(श्लोक)

एकस्मिन्दिवसावसानसमये, मैं था गया बाग में।
काचित्तत्र कुरंगबालनयना, गुल तोड़ती थी खड़ी॥
तां दृष्ट्वा नवयौवनां शशिमुखीं, मैं मोह में जा पड़ा।
नो जीवामि त्वया विना शृणु प्रिये, तू यार कैसे मिले॥ 6 ॥

(अर्थ)

एक दिन संध्या के समय मैं बाग में गया था। वहाँ कोई मृगछौने के नेत्रों के समान आंख वाली खड़ी फूल तोड़ती थी। उस चन्द्रमुखी नयी युवती को देखकर मैं मोह में जा पड़ा। हे प्रिये! सुनो, तुम्हारे बिना मैं नहीं जी सकता (इसलिए बताओ) कि तुम कैसे मिलोगी?

(श्लोक)

अच्युतच्चरणातरंगिणि शशिशेखर-मौलि-मालतीमाले।
मम तनु-वितरण-समये हरता देया न मे हरिता ॥ 7 ॥

(अर्थ)

विष्णु भगवान के चरणों से प्रवाहित होने वाली और महादेव जी के मस्तक पर मालती माला के समान शोभित होने वाली हे गंगे, मुझे तारने के समय महादेव बनाना न कि विष्णु। अर्थात् तब मैं तुम्हें शिर पर धारण कर सकूँगा। इसी अर्थ का दोहा सं० 2 भी है।

(बहुभाषा-श्लोक)

भर्ता प्राची गतो मे, बहुरि न बगदे, शूं करूं रे हवे हूं।
माह्नो कर्माचि गोष्ठी, अब पुन शृणसि, गाँठ धेलो न ईठे ॥
म्हारी तीरा सुतोरा, ख़रच बहुत है, ईहरा टावरा चा,
दिट्ठी टेंडो दिलो दो, इश्क अल् फिदा, ओडियो बच्चनाढू ॥ 8 ॥

(अर्थ)

मेरे पति पूर्व की ओर जो गए सो फिर न लौटे, अब मैं क्या करूं। मेरे कर्म की बात है। अब और सुनो कि गाँठ में एक अधेला भी नहीं है। मुझसे सुनो कि खर्च अधिक है और परिवार भी बहुत है। तेरे देखने को मन में ऐसा हो रहा है कि प्रेम पर निछावर हो जाऊँ। (विरहिणी नायिका इस प्रकार कातर हो रही थी कि किसी ने कहा कि) वह आया है।

परिशिष्ट

शब्दार्थ

अगोट=मेल रहित, फूट।
अच्युतच्चरण-तरंगिणी=गंगा।
अतुरीन=चंचल।
अथवत=अस्त होता है।
अघोरी=चंदवा या ओढ़ना।
अनकीन्ही बातें करें=विषय से अपरिचित होते हुए बकवाद करना।
अनख=डाह, द्वेष।
अनखन=डिठौना या काजल।
अनखाना=अन्न खाये हुए, भरा पेट, बुरा मानना।
अनखाय=बुरा मानते हुए, अकुलाते हुए।
अनत=अन्यत्र।
अनधन=परायी स्त्री।
अनियारे=नुकीले, नुकीले।
अपत=पत्रहीन।
अमर बेल=आकाश बेल। जड़, पत्ते रहित सूत के समान पीली बेल। जिस वृक्ष पर होती है उसे सुखा डालती है।
अमरैया=आम्र-कुंज।
अरसिया=दर्पण।
अवध=अवधि, समय, मीयाद।
अहटाय=पायजेब की आवाज तक न करना।
अहूर निसि=रात-दिन।
आखर=अक्षर।
आन=ध्यान।
आसु=शीघ्र।
इदव-भाल=शिव (भाल पर चन्द्रमा धारण करने वाले)।
उखारी=ईख का खेत।
उचार=उचटना।

उनमान = परिमाण।
उनहार = समानता।
उपरिया = उपला।
उमगं = उमगित होना, उमड़ना।
उरग = सर्प।
उरज = उरोज।
ऊगत = उदय होता है।
ऊजरी = उज्ज्वल।
ऊंन = रज।
ओसेर = उबटन, मिकल करने से पूर्व जो चिकनाई जाती है।
अक = कलंक, अपवाद।
अगवं = सहता है।
अड = अडी या एरंड का पेड़।
कचपची = छोटे तारों का समूह, कृत्तिका नक्षत्र।
कचन = बाल, केश।
कठिहारी = लकड़हारिन।
कत = क्यों।
कमनैत = धनुर्धर।
कमला = लक्ष्मी।
कमांगरी = धनुष बनाने (वाले कमानगर की स्त्री) वाली।
करतार = स्रष्टा, विधाता।
करी = हाथी, किया। गजेन्द्र-मोक्ष से पूर्व अन्य हाथी साथ छोड़ गये थे।
करीर = करील।
कड़ए मुख = कटुभाषी।
करंटो = कांटा।
कल्पवृक्ष = स्वर्ग का एक वृक्ष। समुद्र-मथन में निकले चौदह रत्नों में से एक।
कसौटी = सोने की परख का काला पत्थर।
कहाँ सुदामा ··· जोग = कृष्ण और सुदामा की (असमान) मित्रता की ओर संकेत।
कागदिन = कागज का व्यापार करने (वाले की स्त्री) वाली।
काछिन = शाक, भाजी उगाने (वाले की स्त्री) वाली।
कानि = आदर।
किरकिरी = धूल-युक्त, व्यर्थ, बेइज्जती।

किरण = कांति, शोभा।
कुरंड = कारंडव, हंस।
कूबर—हरसा, रथ का वह भाग जिस पर जुआ बांधा जाता है, कुबड़ा।
केतिक = कितना।
कैथिन = कायस्थिन।
कोरिन = मोटा कपड़ा बुनने (वाले कोरी की स्त्री) वाली।
कौरी = रूठी हुई।
कौरी वैस = छोटी आयु की स्त्री।
कंगनिआ = कड़ा या कंगन।
कचनी = साधारण वेश्या।
कज = करजा।
कंद = मिश्री।
कुंदिन कुंदीगरिन, वस्त्र पर कुंदी करने वाली, सोने-चाँदी के पत्तर पीटने (वाले की स्त्री) वाली।
खर = तिनका या घास।
खाट = शब्द।
खीस = व्यर्थ।
खैर = कत्था।
खोरि = दोष।
गजक = चोखना।
गजपाय = गजपाल, महावत।
गजरवा = गजरा या माला।
गड़ही को पानि = छोटे गड्ढे का पानी।
गड़ुवा = टोंटीदार जल-पात्र जिसकी गर्दन पतली होती है।
गथ = पूँजी या कोष।
गरज = स्वार्थ।
गरुए = गंभीर, अन्न।
गवनवाँ = द्विरागमन, गौना।
गाढ़ि = अकाट्य, अनुल्लंघनीय।
गाढ़े = बुरे।
गाँठ = ईख की गाँठ, मनोमालिन्य।
गाँधिन = इत्र और सुगन्धित तेल बेचने (वाले गंधी की स्त्री) वाली।
गाँस = गाँठ, मिलावट, मनोमालिन्य।
गाँसी = तीर, बरछी।

गुन = गुण, धागा, रस्सी।
गुराइसु = गुरु अर्थात् बड़ों की आज्ञा।
गुलियाना = गोला बनाकर बलपूर्वक मुँह में डालना।
गेह = घर।
गैन = दिन।
गैर = (अरबी—गैर) शत्रुता, बैर।
गोइअवाँ = सखियों का।
गोत = गोत्र।
गोय = छिपाना।
गोरस = दही, इन्द्रिय-सुख।
गोहन = गोशाला या खिरक।
गोहने या गोहनै = संग।
घइलन = गगरी, जल-पात्र।
घरिअलवा, घरियाल = घड़ियाल, काँसे का घण्टा।
घासिन = घसियारिन, घास बेचने (वाले की स्त्री) वाली।
घुरदा = घोर, गरजा।
घूरे = घूड़ा।
चखटोना = आँखों से जादू करने वाली।
चवाव = झूठी बातें।
चिरवादारिनी = साईस की स्त्री।
चितसरिया = चित्रशाला।
चीतावनी = चीता पालने (वाले की स्त्री) वाली।
चूहरी = मेहतरानी, चडालिन।
चेटुवा = चिड़िया का बच्चा।
चाटार = तेज, चोखी।
चोरी करि होरी रची = चोरी करके होरी का ईंधन इकट्ठा किया जाता है।
छाला = चमड़ी, शरीर।
छिगुरिया = कनिष्ठ अगुली।
छितव = पृथ्वी।
छितिखनि = पृथ्वी खोदती है।
छीपन = कपड़ा छापने (वाले छीपी की स्त्री) वाली।
छोहरिया = लड़की।
जक = लज्जा, हार, भय, रट।
जम के किंकर = यमराज के दूत।

जमनियाँ = रात।
जरझकिनी = नीचे देखने वाली, धन चाहने वाली।
जरतरिआ = जरी का, रुपहले तारों का।
जरदी = जर्दी, पीलापन।
जरु = जलते हैं।
जवकवा, जावक = महावर।
जहरि = पैर का घुंघरूदार आभूषण।
जीरन = जीर्ण, पुराना।
जुकिहारी = जोंक लगाने वाली।
जुरते = तत्काल।
जोखिता = (स०—योषिता) स्त्री, योगीपन।
झँपहि = ढँक लेता है।
टूटे = रुष्ट, कुपित, बिगड़े।
टेसू = ढाक, पलाश।
टोटे = अभाव, नुकसान, निर्धनता।
टोरि—तोड़ना।
टोलवा = टोले में या मुहल्ले में।
ठठेरिनी = बर्तन बनाने (वाले ठठेरे की स्त्री) वाली।
डसाय = बिछाकर।
डांडी मारना = कम तोलना।
डिग = पास।
ढेंकुली = चकलिया, जिससे कुएँ में रस्सी डाली और खींची जाती है।
ढोठनवा = पुत्र।
ढफालिनी = डफ, ताशा की मरम्मत करने (वाले की स्त्री) वाली।
तकद = देखूंगा।
तबासिनी = थाल में साथ वस्तु रखकर बेचने (वाले की स्त्री) वाली।
तरकि = बिगड़ना, झुँझलाना।
तरंयन = तारे।
ताइकै = गर्म करके।
तातों = जलता हुआ।
तासीर = प्रभाव, प्रकृति।
तितही = उतना ही।
तिरियवा = स्त्रियाँ।
तुरकिन = तुर्क जाति की स्त्री।

तुरंग=घोड़ा।
तुरिय=तुरीयावस्था, मोक्ष।
थोथे=दिखावटी, निस्सार।
थोपिन=मिट्टी थोपने वाली स्त्री।
दधीचि=वृत्रासुर से देवताओं की रक्षा के लिए, इस दानी ऋषि ने, वज्र बनाने के लिए अपनी हड्डियाँ दे दी थी।
दबगारिन=कुप्पा बनाने (वाले की स्त्री) वाली, ढाल बनाने (वाले की स्त्री) वाली।
दमरी=दमड़ी, दस कौड़ी।
दमामा=धौंसा, बड़ा नगाड़ा।
दर-दर=द्वार-द्वार।
दवत=जलाती है।
दवरिया=दावाग्नि, जंगल की आग।
दाँव=समान, इच्छानुकूल।
दीबो=देना।
दीरघ=दीर्घ, बड़ा।
दुति=द्युति, कान्ति, प्रकाश।
दुचिति=घबराई हुई।
दूबर=दुर्बल।
देवरा=भूत-प्रेत।
धनिया=स्त्री।
धायबे=देखने के लिए।
न उबरं=किसी काम का न रहना।
नटनदनी=नट की बेटी।
नरद=जुड़वाँ गोटी (शतरंज में ऐसी गोटी पृथक्-पृथक् नहीं, एक साथ पिटती हैं।)
नवा=झुका हुआ।
नाँधनि=प्रारंभ करना, लगाना।
नालबंदिन=घोड़े के सुम में नाल बाँधने (वाले की स्त्री) वाली।
नारि बेरा=अज्ञातवास में विराट के यहाँ अर्जुन का बृहन्नला के रूप में रहने का संकेत।
नारायण को भयो=राजा बलि की कथा की ओर संकेत, जिसमें विष्णु को वामनावतार धारण करना पड़ा था।
निचवई जोय=नीचे की ओर।

निहोरवा=देखा, निहोरे (विनय) करना।
नेरे=पास।
नै चलो=नम्रता से व्यवहार करो।
पछोरना=फटकारना।
पटवन=पटवा (वस्त्र गूंथने वाले) की स्त्री, वस्त्र गूंथने वाली।
पठानी=पठान जाति की स्त्री।
पन्नग बेलि=नाग बेलि, पान की बेल।
पयान=हट जाना।
परबिनवा=प्रवीण, चतुर।
परि खेत=युद्धभूमि में गिरकर।
परलेउ भोर=सबेरा कर दिया।
पवढ़हु=पौढ़हु, सोओ।
पसरि=फैलकर।
पाटम्बर, पाटंबर=(सं०—पीताम्बर), पीला वस्त्र।
पातुरी=वेश्या।
पाय=जल।
पान=पाणि, हाथ।
पानी=जल, प्रतिष्ठा, मोती की चमक।
पारि=डालना, डुबोना।
पिपीलिका=चींटी।
पियरवा=प्रीतम।
पुरुष पुरातन=विष्णु, वृद्ध।
पेक पायक=फेरी वाला, टुटपुंजहा व्यापारी।
पेखि=देखकर।
फबै=शोभा देना।
फजीहत=दुर्दशा, बदनामी।
फरजी=वजीर (शतरंज का मोहरा)।
फल=स्तन।
फुंदना=रेशम आदि का झब्बा।
फूंदी=इजारबन्द।
बइरिनिया=बैरिन।
बगर=बड़ा मकान या महल।
बढ़े=युवावस्था, दीपक बढ़ाना (बुझाना)।
बतौरी=रसौली, रोग विशेष जिसमें रक्त संचित होकर, पीड़ा रहित गाँठ

बन जाता है।

बनजारी = बनजारिन, बनजारे (घुमन्तू जाति) की स्त्री।

बरइन = तमोलिन।

बरहि = वट वृक्ष।

बरी = उर्द की दाल की बनी बड़ी।

बरेह या बरोह = बरगद की जटाएँ।

बरैगो = प्रशंसा करेगा।

बरोठवा = बैठक में।

बलाकिन = बगुलियाँ।

बहरी = शिकारी पक्षी।

बहुसनि = वाचालता।

बाजदारिनी = बाज पक्षी पर नियुक्त सेवक की स्त्री।

बाजीगरिन = जादू का खेल दिखाने (वाले जादूगर या बाजीगर की स्त्री) वाली।

बाजू = भुजा।

बाट = बाजार, रास्ता।

बार = देर।

बारे = बालपन (शैशवावस्था), बालना (जलाना)।

बाय लेबना = श्वास लेना, अहंकार करना।

बावन = विष्णु का वामनावतार, जो बावन अंगुल का था। दैत्यराज बलि से तीन पग पृथ्वी का दान माँगकर, विराट रूप धारण करके तीनों लोक नाप लिये थे।

बिआधि = व्याधि, विपत्ति।

बिकरार = बेचैन।

बिजन = पंखा।

बिथुरे = छिटके हुए।

बिरिया या बेरिया = समय, बार।

बिलमाय = फँसाना या लुभाना।

बिसात = सामर्थ्य।

बिहाय = बीतना।

बीरी = पान की लालिमा।

बेइलिया = लता।

बेझा = बेधक, छेद करने का औजार, बर्मा।

बेर-केर = बेर और केला।

बेलन = बेला के फूल।
बेसहिया — क्रय करना।
बौड़ = भ्रम मे पड़ी, बौराई, पागल।
बस दिया = आकाश दीप।
भरत = भरण-पालन करना।
भाइ = प्रेम।
भाटा = बेंगन।
भाटिन = भाट की स्त्री।
भार = बोझा।
भिनुसार = प्रभात, प्रातःकाल।
भीत = दीवाल।
भेषज = औषधि।
भौर = उलती हुई धूल।
भँगेरिनी = भाँग बेचने वाली।
भँवरी = विवाह के अवसर पर ली जाने वाली सप्तपदी।
भृगु मारी लात = विष्णु की सहनशीलता व महानता को परखने के लिए भृगु ऋषि द्वारा मारी गई लात।
मख = यज्ञ।
मगद स्थान = मगध देश। ऐसा माना जाता है—काशी में मुक्ति होती है। 'भक्तमाल' की एक कथा के अनुसार—एक पुरुष काशी मे रहने लगा। वही रहने को उसने हाथ-पैर काट लिये किन्तु उसका चंचल घोड़ा उसे मगध देश ले गया।
मधुकरी = भीख।
मसमथागी = काम-पीड़ित।
मड़ए तर की गाँठि = विवाह-मंडप मे वर-वधू को लगाई जाने वाली गाँठ।
मनसा = मंशा, इच्छा।
मया = प्रेम।
मरहा = जंगल का भूत। बाघ द्वारा भूत की आत्मा पूजी जाती है ताकि अगले जीवन मे नरभक्षी न बन सके।
मरुके = कठिनाई से।
मसिकरिन = रोशनाई बनाने (वाले की स्त्री) वाली।
महि नभ सर पंजर कियो = इन्द्र से खाण्डव-वन की रक्षा के लिए अर्जुन द्वारा धरती से आकाश तक बाणो का लगाया पिंजड़ा।

मातंग=श्वपच, अस्पृश्य।
मास चखाइ कै=शारीरिक सौंदर्य दिखाकर।
माह=माघ।
मुकुरि=अस्वीकार करना, नटना।
मुनि पतनी तरी=राम द्वारा गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या के उद्धार की कथा।
मुरवा=मोर।
मुमकला=धातु चमकाने के लिए मसाला रखने का [illegible]
मुंह स्याह=खिजाब लगाना।
मुहार=ऊंट की नकेल।
मूरा=बड़ी मूली।
मेख=खूंटी।
मैके=मायके, माता का घर।
मैन-तुरग=मोम का घोड़ा।
मोगरी=काठ का हथौड़ा।
मदन=खल, दुष्ट।
यारी=मित्रता, मोह, ममता।
रहनियां=रात।
रमसरा=रामसर का पौधा। गन्ने जैसे सरकंडे वाला यह पौधा ईख के खेत में अपने आप पैदा हो जाता है। इसमें रस नहीं होता।
रहसनि=काम-क्रीड़ा।
रहिला=मडुआ या चना।
रहंट=कुएं से जल निकालने का यंत्र।
रिनिया=ऋण देने वाला।
रीते=सूखे, भूखे, रिक्त।
रूख=वृक्ष।
रेख=पत्थर की लकीर, निश्चय।
रौल=हुल्लड़, आंदोलन।
लटी=बुरी।
लसकरी=लश्करी, सैनिक।
लहरिया=लहरदार ओढ़ने का वस्त्र।
लुगरा=वस्त्र।
लुब्धी=लालची।
लुहारि=लुहारिन, लुहार की स्त्री।

लुहार = लौह के समान, रक्तरंजित।
लेजू = रस्सी, रज्जु।
लेह = चीरना।
लोइन = लोचन, नेत्र।
लौन = लावण्य।
ब्यावर = प्रसूति की।
विष भैया = विष का भाई अर्थात चन्द्रमा। समुद्र-मथन में दोनों का समुद्र से एक साथ जन्म।
विभासै = विभास-राग।
विष खाय के'''जगदीश = समुद्र-मथन से निकले हलाहल के पान से सम्बन्धित शिव की कथा की ओर संकेत। हलाहल से जगत् को रक्षा करने के कारण जगदीश कहलाये।
विषया = व्यसन, आसक्ति।
विषान = (सं०—विषाण) सींग।
वैशिक = वेश्यागामी।
शाह = बादशाह, शतरंज का मोहरा।
शिव-वाहन = बैल।
शिवि = काशिराज शिवि की दानशीलता की कथा प्रसिद्ध है। बाज (इन्द्र) से कबूतर (अग्नि) की रक्षा के लिए अपने शरीर का मांस काटकर दे दिया। फिर भी पलड़ा भारी रहा तो सिर काटने को उद्यत हो गये थे।
सक्कनि = भिश्तिन, पानी भरने वाले (भिश्ती) की पत्नी।
सचान = श्येन पक्षी, बाज।
सतराइ = चिढ़ना, कोप करना।
सफरिन = मछली।
सबनीगरिन = साबुन बनाने (वाले की स्त्री) वाली।
सम्पुटी = पानी की घड़ी का पात्र (कटोरी)।
सरग-पताल = अंड-बंड, कुबोल।
सरव = पुरवा, मिट्टी का जल-पात्र, सकोरा।
सरवर = बराबरी।
सरवानी = ऊँट हाँकने वाली की स्त्री।
सरीकन = छड़।
सहो = साईस।

सहेटवा = संकेत-स्थल।
सान = तेज।
सिकलीगरिन = धातु को चमकाने (वाले की स्त्री) वाली।
सिराहि = समाप्त होना, मिटना।
सिलमिली = फिसलने वाली।
सुनारि = सुंदर स्त्री, सुनारिन (सुनार की स्त्री)।
सुरंग = लाल।
सुवन-समीर = वायु पुत्र, हनुमान।
सेल्ह = बर्छा, भाला।
सेंहुड = लम्बे पत्ते वाला पौधा, जिसकी तासीर गर्म होती है। प्रायः बच्चों को दिया जाता है।
सैना = आँखों का संकेत।
सोस = (फारसी-अफसोस) शोक, दुःख।
हरि हाथी सों कब हती = गज-ग्राह की कथा की ओर संकेत। विष्णु ने मगर की पकड़ से हाथी को मुक्त कराया था।
हुलए गवन = धीमी चाल से।
हलुकन = छिछोरे, मूसी।
हवाल = स्थिति।
हहरि कै = विह्वल होकर, गिड़गिड़ा कर।
हूक = घाव, नस के टूट जाने पर उत्पन्न चमक।
हेरत = देखते हुए।
हेरनहार = खोजने वाला, देखने वाला।

नगर-शोभा के दोहों से मिलते-जुलते कुछ बरवै मिले हैं, जिनमें से चार यहाँ उद्धृत हैं—

ऊँच जाति ब्रहानिया बरनि न जाय।
दौरि दौरि पालागी सीस छुआय ॥1॥
बहिबहि लौसि बरलिया हिय हरि लेत।
पतरी के अस डोब करजवा देत ॥2॥
सुंदरि तरुनि तमोलिनि तरवन कान।
हेरें हँसे हरें मन फेरे पान ॥3॥
कलवारी मदमाती काम कलोल।
भरि भरि देय पियलवा महा ठठोल ॥4॥

ग्रन्थ-सूची

जीवनी के लिए प्रयुक्त संदर्भ-ग्रन्थ

1. अकबरनामा, भाग 1, 2, 3, अबुलफज़ल, अनु० ब्लाकमैन, 1873।
2 हुमायूँनामा, गुलबदन बेगम, अनु० ब्रजरत्नदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, हि० सं०, 1951।
3. तबक़ाते अकबरी, भाग 1, 2, 3 निजामुद्दीन, अनु० दे, 1936।
4 आइने-अकबरी, भाग 1, 2, 3, अबुलफज़ल, अनु० ब्लाकमैन, 1873।
5 तुज़ुके जहाँगीरी, जहाँगीर, भाग 1 व 2, अनु० अलेक्ज़ेंडर रोजर्स, 1904, 1914।
6. मेमोरीज ऑफ द एम्परर जहाँगीर, जहाँगीर, अनु० मेजर डेविड प्राइस, बंगवासी प्रेस, कलकत्ता, 1904।
7. मआसिरे रहीमी, अब्दुलबाकी, भाग 1, 2, 3, सन् 1925, 1930।
8. खानखानानामा, मुंशी देवी प्रसाद, भारत मित्र प्रेस, कलकत्ता, 1909।
9. मुआसिरुल् उमरा, नवाब समसामुद्दौला शाहनवाज खाँ, अनु० ब्रजरत्नदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, भाग 1 व 2, 1929, 1938।
10 अकबरी-दरबार, भाग 1, 2, 3, आज़ाद, अनु० रामचन्द्र वर्मा, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1924, 1930, 1936।
11. अकबर द ग्रेट मुगल, श्री विसेंट स्मिथ, 1919।
12. द एम्परर अकबर, अगस्टस फ्रेड्रिक, 1941।
13 द कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, 1938।
14. ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ इंडिया, डॉ० ईश्वरी प्रसाद, 1936।
15. महान मुगल अकबर, विसेण्ट स्मिथ, अनु० राजेन्द्रप्रसाद नागर, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, लखनऊ, 1967।
16. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, भाग 5, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1974।
17. तारीख-ए-बदाउनी, अनु० ब्लाखमान, हेग।
18. तारीख-ए-फिरिश्ता, अनु० ब्रिग्स, केम्बे, कलकत्ता, 4 खंड, 1908।

सम्पादन में प्रयुक्त आधार ग्रन्थ

1. रहिमन-विलास, स० व्रजरत्नदास, रामनारायणलाल बुकसेलर, इलाहाबाद, प्रथमावृत्ति, 1930।
2. रहिमन-विलास, स० व्रजरत्नदास, साहित्य सेवा सदन, बनारस, प्र० स०, 1923।
3. रहीम रत्नावली, स० मायाशंकर याज्ञिक, साहित्य सेवा सदन, बनारस प्र० स०, 1928।
4. रहिमन-विनोद, स० अयोध्याप्रसाद शर्मा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्र० स०, 1927।
5. रहीम-कवितावली, स० सुरेन्द्रनाथ तिवारी, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, प्र० स०; 1926।
6. रहिमन-नीति-दोहावली, स० प० लक्ष्मीनिधि चतुर्वेदी, अग्रवाल साहित्य सदन, प्रयाग, प्र० स०, 1932।
7. रहीम, स० रामनरेश त्रिपाठी, हिन्दी मंदिर, प्रयाग, प्र० स०, 1921।
8. रहिमन शतक, स० सूर्यनारायण त्रिपाठी, खेमराज श्रीकृष्ण दास, बम्बई, 1909।
9. कविता-कौमुदी, पहला भाग, स० रामनरेश त्रिपाठी, साहित्य भवन, प्रयाग, द्वि० स०, 1918।
10. रहिमन शतक, स० रामलाल दीक्षित, हिन्दी प्रभा प्रेस, लखीमपुर, प्र० स०, 1898।
11. रहिमन शतक, स० सूर्यनारायण दीक्षित।
12. रहिमन शतक, सं० लाला भगवान दीन।
13. रहिमन शतक, प्र० ज्ञान भास्कर प्रेस, बाराबंकी।
14. रहिमन शतक, प्र० शारदा प्रेस, कानपुर।
15. रहिमन शतक (दो भाग), प्र० बम्बई भूषण यंत्रालय, मथुरा।
16. रहीम-रत्नाकर, सं० उमरावसिंह त्रिपाठी।
17. बरवै नायिका भेद, स० नकछेदी तिवारी, भारत जीवन प्रेस, कानपुर, 1892।
18. खानखानानामा, मुंशी देवीप्रसाद, भारतमित्र प्रेस, कलकत्ता, 1909।
19. विजय हजारा, मौ० अबुलहक़।
20. खेट कौतुकम्, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।
21. खेटकौतुकजातकम्, नवाब खानखाना, टीकाकार—पं० [illegible] सीताराम शर्मा, 1939।

22. भड़ौआ संग्रह—सं० नकछेदी तिवारी।
23. रहिमन चन्द्रिका, सं० रामनाथलाल सुमन।
24. रहिमन-विलास, राधाकृष्ण दास रचित रहीम के दोहों पर कुंडलियाँ

हस्तलिखित ग्रंथ

25. रहीम की दोहावली (मिश्रबंधुओं की हस्तलिखित प्रति)
26. नगर शोभा (मेवात से प्राप्त हस्तलिखित प्रति)
27. बरवै नायिका भेद (अमनी से प्राप्त हस्तलिखित प्रति)
28. बरवै नायिका भेद (काशी नरेश वाली प्रति)

सहायक ग्रंथ

29. शिवसिंह सरोज, शिवसिंह सेंगर।
30. मिश्रबन्धु विनोद, भाग 1, मिश्रबन्धु त्रय।
31. भक्तमाल, नाभादास और प्रियादास।
32. मुआसिरुल उमरा, नवाब समसामुद्दौला शाहनवाज खाँ, अनु० ब्रजरत्नदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, भाग 1 व 2, 1929, 1938।
33. भक्तमाल प्रसंग, वैष्णवदास (हस्तलिखित)।
34. दोहा सार संग्रह, सं० दाराशाह (,,)।
35. गुणगंजनामा (,,)।
36. प्रबोध रस सुधासागर—नवीन (,,)।
37. रतन हजारा—रसनिधि।
38. वाग्विलास, कृष्ण शर्मा, हरिप्रकाश यंत्रालय, काशी, 1901।
39. तुलसी ग्रंथावली, सं० माताप्रसाद गुप्त।
40. मतिराम-ग्रंथावली, सं० कृष्णबिहारी मिश्र, प्र० गंगा पुस्तक माला, लखनऊ।
41. कबीर ग्रंथावली, सं० माताप्रसाद गुप्त।
42. वृंद-सतसई।
43. चकत्ता वंश की परम्परा (हस्तलिखित)
44. चस कवित्त (,,)
45. सुभाषितरत्नभांडागारम्।
46 विविध संग्रह, सं० ठाकुर भूरिसिंह।
47. हिन्दी शब्द सागर की भूमिका, रामचन्द्र शुक्ल।

पत्रिकाएँ

48. सम्मेलन पत्रिका, भाग 12, अंक 1 और 2।
49 समालोचक, भाग 1, अक 2।
50. माधुरी, व० 3, सं० 2, सं० 2, व० 6, स० 2, स० 6।
51. मनोरमा, मई, 1925।